वर्ष ६, अंक ८

श्रीकृष्णाय नमः

जून

ज्येष्ठ १९९१

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
स० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

# विषय सूची


| नं० | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | वेदोपदेश ... ... ... ... ... ... | | २१३ |
| २. | पुराण गाथा [ ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी ... ... ... | | २१४ |
| ३. | त्रेधा निदधे पदं [ ले० श्री पं० रघुनाथ जी स्वामी ... ... ... | | २१८ |
| ४. | भक्त-सिन्धु ( कविता ) [ रचयिता नन्द कुमार शर्मा 'विशारद' ... ... | | २२० |
| ५. | कर्म प्रधान जीवन [ ले० श्री पं० आनन्दी प्रसाद मिश्र "निर्द्वन्द्व" ... ... | | २२१ |
| ६. | किते प्यारे कन्हैया हो (कविता) [ रचयिता श्री बाबूलाल मार्गव ... ... | | २२२ |
| ७. | संस्कृत-साहित्य में श्रीकृष्ण [ ले० पं० श्री गंगाविष्णु विद्याभूषण 'विष्णु' ... ... | | २२३ |
| ८. | गायत्री ... ... ... ... ... ... | | २२७ |
| ९. | उपदेशामृत [ ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी ... ... ... | | २३० |
| १०. | भक्ति का क्षेत्र [ले० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम ... ... ... | | २३८ |
| ११. | कहां हो ( कविता ) [ रचयिता प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम ... ... | | २४१ |
| १२. | गायत्री की उपासना [ ले० श्री महात्मा राम जी आश्रम ... ... ... ... | | २४१ |
| १३. | भजन [ संग्रहकर्ता हरिराम ब्रह्मचारी भ० म० आश्रम ... ... ... | | २४४ |

# भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गौ रक्षा और इसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जावेगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जावगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

## भक्ति के संरक्षक और सहायक

| | |
|---|---|
| राव श्रीराम जी रईस नांगल | १२५) |
| भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी | १२१) |
| ला० गोपालदास जी रईस लाहौर | १११) |
| धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया | १२०) |
| आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर | १०१) |
| बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी | १०१) |
| श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी | १०१) |
| राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा | ५१) |
| चौधरी शिवसहाय जी कोसली | ५१) |
| लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली | ५१) |
| महाशय शोभाराम जी डूंगरवास | २५) |
| डाक्टर झवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा | २५) |
| पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला | २५) |
| चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली | १५) |
| पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली | ६) |
| सूबदार मेजर दीपचन्द जी | ५) |
| मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला | ५ |

❀ गोपाल ❀

G. P. Gorakhpur

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ } श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, ज्येष्ठ, ता० १ जून, १९३५ { अंक ८ पूर्ण संख्या १०४

## वेदोपदेश

धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति द्याम्।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसपु॥

आकाशगामी जल-संघको प्रवाह रूपमें अग्नि युक्त करते और उसी निर्मल जल-संघ द्वारा पृथिवी को व्याप्त कर डालते हैं। अग्नि जठर में अन्न को धारण करते और इसी लिये (वृष्टिजात) अभिनव शस्य के बीच में निवास करते हैं।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

विशुद्धकारी अग्नि, काष्ठों द्वारा वृद्धि प्राप्त कर हमें धन-युक्त अन्न देनेके लिये दीप्तिमान बनो। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारे उस अन्न की पूजा करें।

# पुराण-गाथा

## प्रह्लाद का उपदेश ( चालू )।

( ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी )

प्रह्लाद-हे मित्रो ! यदि तुम कहो कि जब इष्ट मित्र का मरण, धनकी हानि आदि कष्ट की प्राप्ति होगी, तब हमको घरसे वैराग्य हो जायगा, और हम सबको छोड़कर ईश्वर भजन में लग जायंगे, अभी हमें जल्दी क्यों करनी चाहिये, थोड़े दिनों भोग, भोगलें फिर विरक्त हो जायंगे, तो ऐसा नहीं है, क्योंकि जब मनुष्य कुटुम्ब के पालन पोषण में लग कर कुटुम्ब में आसक्त होजाता है, तब वह इतना भूलजाता है कि तीनों तापों से बारम्बार दुःखी होने पर भी उसे वैराग्य नहीं होता किंतु जितना अधिक दुःख प्राप्त होता है, उतना २ वह अधिक कुटुम्ब में ही प्रेम करता है और स्त्री पुत्रादि के भरण पोषण में ही आसक्त होता है, कुटुम्ब को छोड़ना नहीं चाहता ! क्योंकि कुटुम्ब के भरण पोषण में जो दुःख होता है, उसको वह दुःख नहीं समझता किंतु उस दुःख को भी सुख ही मानता है, दूसरे के धन को हरने वाला यहां राजा आदि से दंड पाता है, इस बातको मनुष्य जानता है और चोरी करने वाले को मरने के पीछे नरक की प्राप्ति होती है, इस बातको मनुष्य शास्त्रों से सुनता है, इस प्रकार चोरी करने के दोषों को जानकर भी कुटुम्बासक्त मनुष्य दूसरे के धन की चोरी करता है और लोक परलोक दोनों को बिगाड़ लेता है, यहां अपकीर्ति और दंडपाता है और परलोक में यमयातना भोगता है।

हे दैत्यपुत्रो ! शास्त्र का जानने वाला विद्वान भी कुटुम्ब का पोषण करता हुआ आत्मलोक की यानी अपने स्वरूप को जानने के लिये समर्थ नहीं होता किंतु जैसे मूढ पुरुष अपना पराया मान कर रागद्वेष करता है, इसी प्रकार वह भी करता है, रागद्वेष करने से जन्म मरण रूप संसार को ही प्राप्त होता है, सुख स्वरूप अपने आत्मा जगदीश्वर को प्राप्त नहीं होता है। हे मित्रो ! अब तुम समझ गये होगे कि पुत्र पौत्रादि महान् दृढ़ शृंखला यानी बेड़ी है, इस बेड़ी के काटने को कुटुम्बासक्त पुरुष कैसे समर्थ हो सका है नहीं होसका ! स्नेह की फांसी बहुत ही कड़ी है, इस स्नेह की फांसी को युवावस्था में पहुंच कर तुम काट नहीं सके ! अभी तो तुम बालक हो, तुम्हारी बुद्धि शुद्ध है, ज्यों २ तुम बड़े होते जाओगे और नये २ संबंध जोड़ते जाओगे, त्यों २ तुम में देहाभिमान बढ़ता जायगा और कुटुम्ब में ममता अधिक होती जायगी। ममता अधिक होने से रागद्वेष की वृद्धि होगी, यानी अनुकूल पदार्थों में राग और प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष बढ़ता जायगा, रागद्वेष बढने से बुद्धि मलिन होती जायगी, मलिन बुद्धि संसार में फंसावेगी, संसार में फसने से दुःख बढ़ता जायगा, दुःख बढ़ने से तुम अपने हृदय में पास ही रहने वाले

अपने आत्मा, हृषीकेश को नहीं देख सकोगे। ये इन्द्रियां बड़ी ही बलवान हैं, विद्वान की बुद्धि को भी भ्रष्ट कर देती हैं यदि तुम अभी से उनको वश में नहीं रक्खोगे, तो आगे युवावस्था में तुम इनको वश नहीं कर सकोगे! अपनी इन्द्रियां ही शत्रु हैं और ये ही इन्द्रियां जब वश में होजाती हैं, तो मित्र हो जाती हैं यानी जब ये इन्द्रियां वश नहीं होती, तो जीवको संसार समुद्र में डुबा देती हैं और जब वश हो जाती हैं, तो कल्याण के मार्ग में लेजाती हैं, इसलिये ईश्वर भजन में लगकर अभी से इनको वश में करो, यह ही कल्याण का मार्ग है।

हे मित्रो। इन्द्रियां प्रबल हैं और युवावस्था में आसक्ति का छुटना कठिन है इसलिये अभी से विषय रूप दैत्यों में शीघ्र ही आसक्ति को छोड़दो और आदिदेव नारायण का भजन करो। मुक्तसंग पुरुषों के यानी आसक्ति छोड़ने वाले भक्तों के यह नारायण ही इष्टदेव हैं, यह ही आत्मा हैं और यह ही अपवर्ग यानी मोक्ष हैं। इन्हीं के बताने के लिये वेद प्रवर्त हुए हैं, सब वेद इन्हीं को बताते हैं। जो जिसको भजता है, वह वह ही होजाता है, ऐसा नियम है। जब मनुष्य विषयों का ध्यान करता है तो उस मनुष्य का विषयों से संग होजाता है यानी विषयों को वह शोभन और हितकर समझने लगता है, हितकर और शोभन समझने से उनके पाने की इच्छा होती है, इच्छा में कोई प्रतिबंधक होता है, तो उसके ऊपर क्रोध होता है, क्रोध से संमोह होता है यानी हिताहित का ज्ञान जाता रहता है, ऐसा होने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, बुद्धि भ्रष्ट होने से जीव का नाश होता है यानी जीव नीची योनियों में चला जाता है। हे मित्रो! जब विषयों का ध्यान करने से ही मनुष्य का अनर्थ होता है, तो विषयों के भोगने में अनर्थ हो, इसमें तो कहना ही क्या है, इसलिये श्रेयाभिलाषी को विषयों से मुख मोड़कर ईश्वर भजन रूप श्रेय में लग जाना चाहिये, देर न करनी चाहिये किंतु शीघ्र ही लगना चाहिये, ऐसा विद्वानों का मत है।

हे सज्जनो! यदि कहो कि ईश्वर भजन में तो बड़ी कठिनाई है, क्योंकि भोगों में तो प्रत्यक्ष सुख दीखता है और विषय भी दीखते हैं परन्तु ईश्वर को तो आज तक हमने देखा ही नहीं है, मात्र सुना ही सुना है, तो जिसको हम जानते ही नहीं, उसका भजन कैसे कर सकते हैं! नहीं कर सकते, तो ऐसा नहीं है, हे दैत्यपुत्रो! अच्युत भगवान के भजन करने में कुछ प्रयास यानी परिश्रम नहीं होता, क्योंकि जनार्दन भगवान सब भूतों के आत्मा यानी स्वरूप ही हैं, और सब प्रकार से सिद्ध हैं। दूसरे का भजन करने में तो कठिनाई है। क्योंकि वह हमसे भिन्न है, अपने आपका भजन करने में प्रयास ही क्या है। कुछ भी नहीं है! जो वस्तु असिद्ध हो, उसकी सिद्धि करनी कठिन है और सिद्ध वस्तु तो सर्वदा, सर्वथा सिद्ध ही है, उसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह तो प्रत्यक्ष है ही।

हे अंग! यदि तुम पूछो कि अच्युत भगवान सबके आत्मा और सिद्ध कैसे हैं, तो सुनो कि स्थावर से लेकर ब्रह्मा तक सर्व भूतों में यानी जीवों में और भौतिकों में यानी अजीवों में, आकाशादि भूतों में, सत्त्वादि गुणों में, गुणों की साम्यता रूप प्रधानों में और महत्तत्त्व आदि गुणों के व्यतिकर यानी गुणों की न्यूनता अधिकता में एक ही परब्रह्म भगवान, ईश्वर, अव्यय आत्मा है। यदि कहो कि जब एक ही अव्यय आत्मा है, तो द्रष्टा दृश्य, भोक्ता भोग्य आदि भेद कैसे हैं, तो सुनो, एकही प्रत्यक् आत्मा द्रष्टा और भोक्ता रूप से व्यापक कह

लाता है और दृश्य, भोग्य देहादि रूप से व्याप्य कहा जाता है, वस्तुतः तो वह अनिर्देश्य यानी अकथनीय और अविकल्पित यानी भेद से रहित है, क्योंकि परमेश्वर केवल, अनुभव रूप और आनन्द स्वरूप है, ऐसे परमेश्वर में व्याप्यव्यापक भाव संभव नहीं है। यदि कहो कि केवल अनुभव, आनन्द स्वरूप परमेश्वर में सर्वज्ञत्व आदि माया के गुण कैसे देखने में आते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि माया से अपने ऐश्वर्य को छुपा कर ईश्वर गुणों के सर्ग रूप से यानी सृष्टि रूप से चेष्टा करता है, वस्तुतः तो केवल, अनुभव, आनन्द स्वरूप ही है।

हे मित्रो ! यह समस्त जगत् हरिका रूप है, हरि के सिवाय कुछ नहीं है, इसलिये तुम असुरभाव को यानी क्रूरस्वभाव को छोड़दो, सबभूतों के ऊपर दया करो, सबको सुहृद समझो, यह ही भगवान् की भक्ति है, इस भक्ति से अधोक्षज भगवान् प्रसन्न होते हैं। जहां भगवान प्रसन्न हुए, फिर भोग और मोक्ष कुछ भी दुर्लभ नहीं है, फिर भी धर्म, अर्थ और काम रूप भोग ये तो गुणों के परिणाम रूप होने से विना यत्न के सिद्ध ही हैं, इनको भगवान् से लेकर क्या करना है, क्योंकि वे तो स्वयं क्षणभंगुर हैं, क्षणभंगुर होने हे वे हमको क्या सुख दे सके हैं ? कुछ भी सुख नहीं दे सके, उलटा दुःख ही देंगे, इसलिये उनकी इच्छा करनी व्यर्थ है ! मोक्ष की भी हमको क्यों इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि वह भी कांक्षा विना ही हमको सिद्ध ही है। बहुत से भगवान के भक्त तो भगवान् के देने पर भी मोक्ष को नहीं लेते, किंतु भक्ति में ही रत होते हैं, क्योंकि भगवान् के चरणों के सारको सेवन करने वालों को मोक्ष से क्या प्रयोजन है, वह तो भगवान् के चरणों के पीछे २ लगी फिरती है।

हे मित्रो ! यदि तुम कहो कि जब धर्मादि पुरुषार्थ रूप ही नहीं हैं, तो ये आचार्यों ने क्यों कहे, वेदोक्त होने से ये भी तो सत्य ही हैं, तो यह तुम्हारा कहना सत्य है, वेदोक्त सब धर्मों को मैं भी सत्य मानता हूं परन्तु धर्म अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग, आत्मविद्या, कर्मविद्या, तर्कविद्या, राजनीति, अनेक प्रकार की जीविका इत्यादि वेद में बताये हुए समस्त पुरुषार्थ यदि अपने सच्चे सुहृद् अंतर्यामी परम पुरुष को अर्पण किये जांय, तब ही पुरुषार्थ हैं, नहीं तो पुरुषार्थ रूप नहीं हैं किंतु निष्फल ही हैं, क्योंकि ये सब त्रिगुणमय हैं और परमात्मा तीनों गुणों से रहित निर्गुण हैं, त्रिगुणमय साधनों से निर्गुण परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकी किंतु निर्गुण परमात्मा की प्राप्ति तो गुणों के बने हुए अपने तीनों देहों सहित समस्त गुणों को परमात्मा को अर्पण करदेने से ही होगी।

हे मित्रो। यह स्थूल देह माता पिता के वीर्य रूप अन्न से बना हुआ है, इसलिये आत्मा नहीं है, सूक्ष्म देह अन्न के सूक्ष्म अंश से बनी हुई वासनाओं का बना हुआ है, इसलिये यह भी आत्मा नहीं है और कारण देह सूक्ष्म वासनाओं का बीज है, यह भी आत्मा नहीं है। तीनों शरीरों की जागत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें भी तीनों शरीरों के संबंध से है, इसिलिये ये भी आत्मा नहीं है, इन तीनों शरीरों के अभिमानी विश्व तैजस और प्राज्ञ ये तीनों भी देहों के संबंध से ही हैं, इसलिये ये भी आत्मा नहीं है, इन तीनों शरीरों के संबंध से ही यह समस्त ब्रह्मांड दिखायी देता है, इसलिये यह भी आत्मा नहीं है। ब्रह्मांड सहित इन तीनों शरीरों को तीनों शरीरों की तीनों अवस्था को और तीनों शरीरों के तीनों अभिमानियों को निर्गुण गुणाधीश, परम

पुरुष के अर्पण करदेना, इसका नाम आत्मसमर्पण है। इस आत्म समर्पण से ही परम पुरुष परमात्मा की प्राप्ति होती है, इसलिये समस्त गुणमय पदार्थों को परमात्मा को अर्पण करके यानी परमात्मा के ऊपर न्योछावर करके सुखी हो जाओ!

हे मित्रो! इसी बात को संक्षेप से समझाता हूं सुनो। खाना, पीना, सोना, बैठना आदि जितने स्वाभाविक कर्म हैं, दान करना, तप करना, यज्ञ करना जितने वैदिक कर्म हैं, संध्या, जप, आदि जितने नित्य कर्म हैं, श्राद्ध, तर्पण आदि जितने नैमित्तिक कर्म हैं, इन सबको हृषीकेश भगवान् की प्रीति के लिये करो, अपनी तृप्ति के लिये न करो, यदि कहो कि स्वर्गलोक आदि फल विद्यमान हैं, तो ईश्वर की प्रीति के लिये कर्म कैसे हो सकेंगे, तो सुनो, स्वर्गलोक आदि किसी फलको परम मत समझो किंतु केशव भगवान् को ही परम समझो। जैसे समुद्र में स्नान करने से सबतीर्थों में स्नान करने का फल होजाता है, इसी प्रकार जनार्दन भगवान् की प्राप्ति से सब फल प्राप्त होजाते हैं अथवा जैसे हाथी के पैर में सबके पैर समाजाते हैं, इसी प्रकार जगन्नाथ देव में सब देवता आजाते हैं, इसलिये अच्युत भगवान् को सबसे परम समझो! यदि कहो कि जब आचार्य, पिता, माता आदि विद्यमान हैं, तो भगवान् में प्रेम कैसे होगा? तो सुनो, आचार्य आदि सब की प्रीति बदले एक परमेश्वर की ही भक्ति करो! यदि कहो की जब स्त्री पुत्रादि में आसक्ति होगी, तो मुकुन्द भगवान् की भक्ति कैसे होगी? तो सुनो, स्त्री पुत्रादि सबका संग यानी सबकी आसक्ति छोड़कर ईश्वर का भजन करो। यदि तुम कहो कि जब शत्रु मित्रादि विद्यमान हैं, तो सबकी आसक्ति कैसे छोड़ी जायगी? तो सुनो, किसी में शत्रुमित्र भाव मत करो, किंतु सब में निर्वैर होकर किसी से रागद्वेष मत करो।

हे मित्रो! जहां तुमने रागद्वेष का त्याग किया कि तुरत ही तुम्हारा मन निर्मल हो जायगा जहां तुम्हारा मन निर्मल हुआ कि तुरत ही तुम्हारे मन में ही हृदयेश भगवान् प्रकट हो जांयगे और जहां हृदय में सच्चिदानन्दघन भगवान् प्रकट हुए कि तुम सर्वत्र ही मायेश भगवान् का दर्शन करोगे घर में, दीवार में, घर में जंगल में, पर्वत में, नदी में समुद्र में, सूर्य में, चन्द्र में, ग्रहों में, नक्षत्रों में, तारों में, बिजली में, मेघ में सर्वत्र अच्युत भगवान् ही दीखायी पड़ेंगे! सोते, जागते, स्वप्न में, खाते में, पीते में, चलते में, बैठते में सर्वदा वैकुण्ठपति, जगत्पति, लक्ष्मीपति भगवान् ही भगवान् दृष्टि पड़ेंगे।

हे दैत्यबालको! यह ज्ञान बहुत ही दुर्लभ है, नरके सखा नारायण ने इस ज्ञानको नारद से कहा था। नारद भगवान् के ऐकान्तिक अकिंचन भक्त हैं, उनकी चरण रज के सेवन करने वालों को ही यह ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान और विज्ञान सहित यह शुद्ध भागवत धर्म पूर्व में मैंने नारद के मुख से सुना है।

दैत्यपुत्र-भाई! प्रल्हाद! तूने और हमने इन आचार्य पुत्रों के सिवाय अन्य किसी गुरु को नहीं देखा है, ये ही दोनों हम सबके नियता हैं, बालकपने से ही इन्होंने हमको शिक्षा दी है। तब तुझे नारद ने कैसे उपदेश दिया, महल के भीतर रहने वाले बालकों के पास कोई आ भी नहीं सका तब नारद कैसे आगये? इस हमारी शंका का समाधान कर, जिससे हमें तेरे कथन पर विश्वास हो!

पाठक! इस का उत्तर जो कुछ प्रल्हाद देंगे, उसको आगे सुनावेंगे। सबका सार यह है।

कुं-सन्तों की सेवा बिना, प्राप्त होय ना ज्ञान।
ना भगवत् में भक्ति हो, नहीं होय कल्याण ॥
नहीं होय कल्याण, बिन भगवत् के ध्याये।
करें सदा हरि ध्यान, शान्ति नर तबही पाये ॥
भोला! सब दे छोड़, कथा गा हरि भक्तों की।
तन धन से करि सेव, चित्त देकर संतों की ॥

---

# त्रेधा निदधे पदं

[ ले०-श्री पं० रघुनाथ जी स्वामी ]

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं
समूढ़ मस्य पांशुरे ॥

'इदं' यह जो कुछ है वह विभाग को प्राप्त होकर अवस्थित है। 'तद्विष्णुः' उसको विष्णु व्यापक परमेश्वर 'विचक्रमे' पाद विक्षेप से व्यापक करता है किस प्रकार से करता है सो कहते हैं 'त्रेधा' तीन प्रकार के भाव से अर्थात् 'पृथिव्या मन्तरिक्षयाविति शाकश्नु' निरुक्त में लिखा है कि पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ लोक रूपी पादों करके विष्णु व्यापक है 'अस्य' इसका 'पांशुरे' धूली रहित अन्तरिक्ष में नहीं दीखता।'तत्पदं विद्युतास्यं विद्युतं ब्रह्म मेवाहुः" इति श्रुतेः। वह पद धूलि के बिना ही विद्युत नाम से प्रसिद्ध तडिताकाश में शुद्ध प्रकाश स्वरूप आनन्द मय है। विस्पष्टतात्पर्य यह है कि विष्णु भगवान ने इस प्रतीयमान जगत् को जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया। इनही विष्णु भगवान के धूलि युक्त चरणों में यह सब जगत् उनके अन्तरभूत ही समाया हुआ है। जिस प्रकार सूर्य रश्मि मयूखा अपने केन्द्र स्थान में वरुच्च प्रत्येक पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबों में जीवन सब जीवनों के पीछे किन्तु आभास द्वारा करने वाली सर्व सृष्टियों को मूला ज्ञान तूला ज्ञान के कार्य जना जन्म मरण असार संसार समुद्र में प्रदीप्त हो प्रभावित हैं, व्याख्या यह है कि सर्व संसार तीन प्रकार का ही प्रतीत होता है, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयः प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयः ध्याता, ध्यान, ध्येयः भूमि अन्तरिक्ष वायुः तडिताकाश, शब्दाकाश, और प्रकाश, ये इत्यादि तीन मण्डल और भी त्रिपुटि 'मण्डल' अन्तःकरण के आक्षेप, विक्षेप, आवरण रूपी मल, विक्षेप, आवरण, दोष हैं, कर्म उपासना ज्ञान ये नष्ट होते हैं दृष्टान्त जैसे आदर्श में तीन दोष के होने से कोई पुरुष या किसी पदार्थ का मुख या प्रतिबिम्ब उसमें नहीं पड़ सका यदि शीशे पर मैल हो तदपि अपना मुख समक्ष में अवलोकन नहीं कर सका, यदि मल भी दूर किया परन्तु नेत्र में आवरण हो तब भी कोई अपना मुख नहीं देख सका, यद्यपि यह भी दोष दूर करलिया, तथापि शीशे का विक्षेप हिलना हो तब भी हम उसमें मुख नहीं देख सके। इसी प्रकार

सब दोषों को नष्ट कर उसमें समान प्रतिबिम्ब देखते हैं उसी प्रकार अपने मनको निष्काम रूपी अर्थात् परोपकार निमित्त वैदिक कर्मों से पवित्र कर पाप रूपी मल को नाश कर देते हैं, और अष्टांग योग रूपी उपासना द्वारा चित्त के विक्षेप को अवरोधन कर ब्रह्म के साक्षात् ज्ञान द्वारा मूला विद्या को नाश कर अपने आपे में आपको ब्रह्म रूप से जानते हैं, तब परमैश्वर को अपने आप स्वतः सिद्ध देखते अर्थात् अनुभव करते हैं, येही तीन प्रकार का जगत् का ज्ञान है चौथा तुर्यावस्था स्वर्ग का ज्ञान है, यही विष्णु के चरणों से अर्थात् पादों से ओत प्रोत होकर माया कहा गया है, इसी को स्वर्ग और ब्रह्मलोक कहते हैं, इसको आध्यिक कथन किया गया है, इसमें प्राणियों की अव्याहत गति होती है, आज कलके पुरुषों को इसी मण्डल का प्रायः ज्ञान या अनुभव होता है, आख्यायिका अलङ्कार द्वारा यह कथन की जाती है, जिस समय कि असुरों का राजा बलि महान् प्रभाव शाली यज्ञ करने लगा, तब देवताओं का राजा इन्द्र संकुलित और व्यथित होकर विष्णु भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना करने लगा कि हे पतित पावन ! परम दयालो परमेश्वर हमारी इन्द्र पुरी चली जारही है, उसको असुरों का राजा बलि आच्छादित करना चाहता है, हे दीनबन्धो ! हमारी सहायता करो, नहीं तो एक सौ यज्ञ पूर्ण हो जाने पर हमको यहां से निकाल देगा, और आपका नियम भंग हो जायेगा। तदनन्तर विष्णु भगवान् ने उसको ढाढस अर्थात् धैर्य बंधा शान्ति प्रद वचन कहा कि तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो अभी तुरन्त मैं उसको कश्यप के यहां अवतार धारण कर अवगत कराऊंगा, कि तेरा अभी समय नहीं है, और उसको ह्रस्व रूप ५२ बावन अंगुल का बनकर पाताल पैठाऊंगा। यह श्रवण कर इन्द्र अपने निज स्थान को प्रस्थान कर गया, तत्पश्चात् विष्णु वामनावतार धारण कर अभ्यागत रूपसे महाराज बलिके यहां पहुंचे, राजा इनका आगमन श्रवण कर इनके आतिथ्य के लिये स्वयं प्रस्थित हुए, और अत्यन्त सुन्दर प्रकाश स्वरूप लघु रूप महात्मा के दर्शन कर अत्यन्त आनन्दित हुए। अर्थात् हर्ष से आल्हादित होकर प्रेमाश्रु पतित होने लगे और प्रेममयी वाणी से कहने लगे कि हे भगवन ! कतिपय अपना अभीष्ट सेवा जो हो सो करने को तत्पर हूं। राजा को उत्कटदान निमित्त उद्यत अवलोकन कर भगवान् बोले हमको तीन पाद पृथिवी ही अभिप्रेत है, अथवा पर्याप्त है विशेष अनावश्यक न गहूंगा। राजा प्रसन्न हो देने को कटिबद्ध हुए, इतने ही में शुक्राचार्य उसके गुरु ने कहा, इसको दान न दे यह तेरा सर्वस्व लेलेगा। बलि ने एक न मानी और दान कर ही दिया और कहा मापो। तदनन्तर उस बाल ब्रह्मचारी ने तीन पदों से उसके सर्वस्व को माप कर अर्द्ध पाद से उसको माप कर पाताल पठाया। यह तो हुई कथा अब सुनो संस्था जो वर्तमान है। रात्रि का अभिमानी देवता ही बलि है और विद्युत का अभिमानी देवता इन्द्र है, इसी प्रकार सूर्य का अभिमानी देवता विष्णु है, यही सुरेश्वर का परम मित्र है। बलि को असुरों का राजा इस अभिप्राय से कथन किया है कि रात्रि में ही मनुष्य आसुरी सम्पत्ति से विशेष परिचत हुए हुए प्राणों की गति शीघ्र संचालन करने के निमित्त इन्द्रियों की शिथिलता द्वारा या तो सोते हैं अथवा रूपादि का उपभोग करते हैं। योगी प्राण को निरोध कर अनुभव करलेता है कि असार संसार और उसके सब ठाठ बाठ सामान सुख सम्पत्ति और विषय भोगों की वासना सब जल तरंगवत् अस्थिर है। एक दिन अवश्य इस

संसार से प्रस्थान करना है और यह सब ठाठ बाट छोड़ जाना है और यह भी कोई नहीं जान सका कि किस समय मौत का वरन्ट आजावे। केवल आत्मा ही अजर अमर है, यदि नित्यात्मा, इन अनित्य पदार्थों के मोह मे फंसा रहा और अपनी वास्तविक उन्नति और भलाई के लिये उसने कुछ यत्न न किया तो यह जीवन ही व्यर्थ हुआ एतादृश सत्संस्कार रूपी भानु जब उदय होता है तब अज्ञान को अथवा अहङ्कार को पाद तले दबाकर नष्ट कर देता है। यह तो रहा अध्यात्म अब अधिदैविक सुनो। जब अदिति नन्दन आदित्य भगवान भास्कर प्रातःकाल उदय होते हैं तब मानो लहोरे से परिज्ञात होते हैं और यह दृश्य प्रकृति पर संघटित होने लगता है कि रात्रि के अभिमानी देव से अपने काल क्षेप के लिये स्थान दान लेना चाहते हैं सो लेही लेते हैं, यही संक्षेपतः परमेश्वर का निदर्शक दृष्टान्त है। या यों समझो कि विष्णु भगवान अपने आत्मा सब भूतों से पालन करने वाले ने इस प्रतीयमान जगत् को जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति पदों द्वारा जब आक्रमण किया उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को स्थापित किया इनही विष्णु यज्ञ रूप भगवान् के धूली युक्त चरणों में यह सब जगत् अन्तर्गत है उसे जानो।

---

# भव-सिन्धु

( रचयिता नन्द कुमार शर्मा 'विशारद' )

श्रुति शास्त्र पुराण सबही, पढ़ये अथसों इति वेदहु चारी।
कहु और उपाय मिल्यौ नहिं दूसर, बीत गयी वय खोजत सारी॥
धन धाम धरा बल वैभव मान, न आवहि एकहु काम अगारी।
बिन धर्म कि नाव सवार भये, भव सिन्धु अपार न होइहि पारी॥

# कर्म प्रधान जीवन

[ ले०—श्री पं० आनन्दी प्रसाद मिश्र 'निर्द्वन्द्व' ]

कर्म ही मनुष्य का भाग्य, कर्म ही मनुष्य का आदर्श है। जीवन की सभी अवस्थाएं किसी न किसी कर्म पर निर्भर रहती हैं। पांव चलने को, हाथ परिश्रम करने को, और कान सुनने को उद्यत हो कर्म का द्योतक बनते हैं। कर्म द्वारा ही हम संसार की वस्तुओं को संग्रह करते और उनके अन्तरगत नियमों को समझते हैं। सब विचारों का परिणाम कर्म ही है, किन्तु उत्तम तथा रसमय कर्म के लिए, बुद्धि पूर्वक विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। कर्म की शक्ति विद्युत से भी अधिक तेज़ है, बिना तार के तार में वह वेग नहीं, जो एक सत् कार्य में निहित है। उचित और उपयोगी कर्म एक विचित्र अनुकम्पाओं के समूह को उत्पन्न करता है। मनुष्य समुदायकी तो कौन कहे, समस्त संसार में उसकी तरंगें विचित्र रूप से विस्तृत होजाती हैं। वह हृदय की रश्मियों को कम्पायमान करती हैं, देश देशान्तरों तथा द्वीप द्वीपान्तरों में उनका तेज फैलता है, और जगत के अन्तर-आत्मा में उन्हें स्थान मिलता है।

\+ + +

करने को तो हम सभी अहर्निश कर्म करते हैं, परन्तु किन्हीं व्यक्तियों और जातियों को उनके कर्मों का फल अधिक मिलता है, किन्हीं को कम। देखते नहीं हो कि पुष्पों तथा फलों से लदे हुए वृक्ष जब मार्ग के इधर उधर उगे हों, अथवा निर्जन वन में फलते फूलते हों, तो उनके सुगन्धमय पुष्प तथा स्वादिष्ट फल बिना प्रयोग ही विनष्ट होजाते हैं, विपरीत इसके जब उन्हें उद्यान में लगाकर सुरक्षित रक्खागया हो, तो कोई फल और मूल भी दुरुपयोग में नहीं आता। उनका मूल्य और मान अतिशय बढ़जाता है। वसुन्धरा उन्हें तारुण्य और लावण्य प्रदान करती है, और मनुष्य उनको सदुपयोग में लेआते हैं।

\+ + +

संसार कर्मका बोधक है। क्षुद्र से क्षुद्र जलाशय की तरंगों से लेकर महासागर की बलवती लहरों पर्यन्त, गुलाब की पंखड़ी से लेकर भगवान भुवनभास्कर की गति पर्यन्त, क्षुद्र कीट की चालसे लेकर महती सेना की स्थिति पर्यन्त समग्र संसार में कर्म के फल प्रादुर्भाव को प्राप्त होरहे हैं। कर्म द्वारा ही संसार में संघर्षण शक्ति उत्पन्न होती है। विधाता ने सूक्ष्म नियमों को स्थूल जगत में अन्तर निहित कर रक्खा है। उत्कृष्ट कर्मों द्वारा ही हम इन नियमों को खोजते, ढूंढते, विचारते और उनका अनुसन्धान करते हैं। मनुष्य जबतक अपनी शक्तियों का अनुभव नहीं करता, तबतक वह एक क्षुद्र पतंग के समान पर्वतपर उगने वाले फल फूलादि खाकर सन्तुष्ट हो पड़ा रहता है। परन्तु ज्योंही वह जीवन के सौन्दर्य और मर्म को समझने लगता है, त्योंही पर्वत अन्तरगत रत्नों की खोज में

निकलता है ! बाह्य जगत सामग्री अब उसकी विक-सित आत्मा को सन्तोष नहीं दे सकती, वह पर्वतों की कन्दिराओं, पृथ्वी के प्रान्तों और महासागर की तहों को खोखला करता और बलात् गुहरत्नों को बाहर निकाल लाता है।

\+ + +

आओ ! बहुमूल्य रत्नों की खोज के निमित्त अपनी शक्तियों को समर्पण कर दो। आपमें से बहुत से गिरेंगे, विफल मनोरथ होंगे, निराशा कड़ देगी। इस तंग मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए बहुतों को हताश होना पड़ेगा, प्रविष्ट होने पर भी अनेकों ठोकरें लगेंगी। परन्तु क्षति क्या ? सहस्रों तागों के मिलाप से जैसे वस्त्र बनता है, वैसे ही सहस्रों, लक्षों तथा कोटिशः मनुष्यों के संगठन से समाज और ज्ञान की रक्षा होती है, उनका जीवन स्थिर होता है। जाति रूपी वस्त्र के भीतर तागे कर्म बन-कर जाति को निर्बल अथवा सबल बनाते हैं और कार्य रूप में परिणत होकर आपके पास लौटते हैं। कर्महीन तथा निरुद्यमी व निरुत्साही मनुष्य पाषाण के सदृश्य है ! वह जीवन के महत्त्व को नहीं सम-झता, वह अपनी आवश्यकताओं को घटाने में ही कल्याण मानता है। उसे संसार और भौतिक जगत भयंकर प्रतीत होता है। कम्पायमान होकर वह उन शक्तियों की स्तुति करने लगता है। विपरीत इसके कर्म के महत्त्व को समझने वाला व्यक्ति भौतिक जगत को दास बनाता और उनसे सेवा लेना ही श्रेयस्कर समझता है, कर्म की महिमा अतुलनीय है।

—o::::o::::o—

# कितै प्यारे कन्हैया हो

[ ले० श्री बाबूलाल भार्गव ]

नख गिरि धरैया ! मान सुरपति मरैया !
ब्रज रक्षा करैया ! कहां देव चपुरैया हो।
मोर मुकट सिरधरैया ! सवहर कुंडल पहिरैया !
पीत कछनी कछैया ! कितै वंशी बजैया हो॥
मन मन्दिर बसैया ! धेनु कुंजन चरैया !
कुंज यमुना खिलैया ! कहां रहस रचैया हो।
निर्धन धन कहैया ! दीन दुखियन के भैया !
हृदय 'विकसित' खिलैया ! कितै प्यारे कन्हैया हो॥

# संस्कृत-साहित्य में श्रीकृष्ण

( संग्रहकर्ता, पं श्रीगंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण, 'विष्णु'

ध्याता मूर्तिः क्षणमच्युतस्य,
श्रेणी नाम्नां गदिता हेलयापि ।
संसारेऽस्मिन् दुरितं हंति पुंसां ,
वातोर्मी पोतमिवाम्भोधि मध्ये ॥ १ ॥

समुद्र में वायु युक्त लहरें जिस प्रकार जहाज को नष्ट कर देती हैं, उसी प्रकार लापरवाही से भी थोड़ी देर ध्यान की हुई कृष्ण के नाम की श्रेणी संसार में पुरुषों के पाप को नाश कर देती है।

राधिका दधि विलोडनस्थिता ,
कृष्णवेणुनिनदैं रथोद्धता ।
यामुनं तट निकुंजमंजसा ,
सा जगाम सलिलाहृतिच्छलात् ॥२ ॥

दही मथती हुई राधिका कृष्ण की वंशी सुनकर अधीर होकर जल्दी से पानी लाने के बहाने यमुना तटके निकुंज को चली गई।

रंगे खलु मल्लकला कुशल-
श्चाणूरमहाभट मोटनकम् ।
यः केलिलवेन चकार स मे ,
संसाररिपुं परिमोटयतु ॥ ३ ॥

बाहु युद्ध में कुशल जिस कृष्ण ने लीला पूर्वक चाणूर नामक महावीर को मारा वह कृष्ण मेरे संसार रूप रिपु को मारे।

विलासवंशस्थविलं मुखानिलैः ,
प्रपूर्य यः पञ्चम रागमुक्तिरन् ।
व्रजांगनानामपि गानशालिनां ,
जहार मानं स हरिः पुनातु वः ॥ ४॥

मुख मारुत से वंशी के छेदों को भरकर जिसने पंचम स्वर से गाते हुए, गाने से चतुर गोपियों के मान को ध्वंस कर दिया, वह हरि हम लोगों की रक्षा करे।

यमुनातटमच्युत केलिकला ,
लसदंघ्रि सरोरुहसंगरुचिम् ।
मुदितोऽटकलेरपनेतुमघं ,
यदि चेच्छसि जन्मनिजं सफलम् ॥५॥

भाई यदि कलि के पाप को दूर करना और अपना जन्म सफल करना चाहते हो तो कृष्ण की केलि कला से सुशोभित चरणों के संग से सुन्दर यमुना तट को चलो।

इन्द्रनीलोपलेनेव या निर्मिता ,
शातकुंभ द्रवालंकृताशोभने ।
नवामेघच्छविः पीतावासा हरेः,
मूर्तिरास्तां जयायोरसि स्रग्विणी ॥६॥

नीलकांत मणि से निर्मित और स्वर्ण रस से

सुशोभित नवीन मेघ की छवि वाली पीताम्बर धारिणी मालावाली हरि की मूर्ति विजय के लिये हो।

जयति जयति देवो देवकीनंदनोऽयं ,
जयति जयति कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः।
जयति जयति मेघश्यामलः कोमलांगो,
जयति जयति पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥७॥

देवकी नन्दन कृष्ण की जय हो, वृष्णिवंश कुल दीपक कृष्ण की जय हो, मेघ श्याम कोमलांग कृष्ण की जय हो, पृथिवी का भार नाश करने वाले मुकुन्द की जय हो।

चंचलचूडं चपलैर्वत्सकुलैः केलिपरम् ।
ध्याय सखे स्मेरमुखं नंदसुतं माणवकम् ॥८

चंचल चूड़ावाले, चपल बछड़ों के साथ खेलने वाले, हंसते हुये बालरूप नंद के सुत का ध्यान करो।

येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना ,
नग्ना च पांडववधूः स्थगिता दुकूलैः।
मोचितो झलचरस्य मुखाद्गजेन्द्रो ,
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबंधुः ॥९॥

जिसने जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार किया, नग्न होती हुई द्रौपदी को वस्त्रों से ढक दिया, और मगर के मुख से गजेन्द्र को बचाया उस दीन बन्धु के मुझे दर्शन हो।

नीलेन्दीवर तुल्यकृष्ण वदनं स्वर्णाम्बरालंकृतं,
मुद्रांज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि ।
राधां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युत्प्रभां यादवम्
पश्यन्तं मुकुटांगदादि विविधाकल्पोज्वलांगं भजे

नील कमल सदृश श्याम शरीर वाले, पीताम्बर धारण किये हुए, एक हाथ से ज्ञान मुद्रा और दूसरे से कमल लिए हुए पास में बैठी हुई विद्युत्कांति वाली कमल लिए राधा को देखने वाले नाना आभूषणों से प्रकाशित यादव कृष्ण को प्रणाम है।

कायमनोवाक्यैः परिशुद्धै-
र्यस्य सदा कंसद्विषि भक्तिः।
राज्यपदे हर्म्यालिरुदारा ,
रुक्मवती विघ्नः खलु तस्य ॥११॥

जिसकी परिशुद्ध काय, मन वाणी से कृष्ण में सच्ची भक्ति है, उसके लिये राज्य और कंचन के महलों की श्रेणी विघ्न हैं।

नारायणो नाम नरो नराणां ,
प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं ,
हरत्यशेषं स्मरतां सदैव ॥१२॥

नरों में श्रेष्ठ नारायण पृथ्वी में सर्व श्रेष्ठ चोर हैं। जो निरंतर उनका स्मरण करता है उसके अनेकों जन्म के पातक चुरा लेते हैं।

सपीतवासाः प्रगृहीत शार्ङ्गः ,
मनोज्ञ भीमं वपुराय कृष्णः।
शतह्रदेनायुधवान् निशायां ,
संमृज्यमानः शशिनेव मेघः ॥१३॥

पीताम्बर धारी और शार्ङ्ग धनुष लिये हुये कृष्ण का शरीर ऐसा सुन्दर और भयंकर दिखता है जैसे, बिजली और इन्द्रचाप युक्त मेघ रात्रि में चन्द्रमा से मिला हुआ होता है।

विधीयते यत्र यदुनन्दनेन ;
नापेक्षते तत्र सहाय शक्तिः ।
पांचालकन्यां चलदीर्घतायां ,
न तत्र तन्तुर्न च तंतुवायः ॥ १४ ॥

भगवान कृष्ण जिसके सहायक हैं उसे अन्य किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। द्रौपदी के वस्त्र बढ़ने के समय में क्या वहां सूत और बीनने वाला बैठा था।

स्यात् कृष्णनाम चरितादिसितापविद्या ,
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिकैव ।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव सेव्या ,
स्वाद्वी भवेदपिच तद्गद मूलहंत्री ॥ १५ ॥

कृष्ण गुणानुवाद रूपी सिता (मिश्री) अविद्या (अज्ञानता) रूपी पित्त रोग से पीड़ित मनुष्य की रसना को भले ही न रुचिकर हो, किंतु है वह निरंतर सेवन करने योग्य, क्योंकि वह स्वादयुक्त होती हुई अविद्या रूपी रोग को जड़ से नाश कर देती है।

पथि धावन्निह पतितो ,
रोदिष्यम्बा करावलम्बाय ।
पतितोद्धारणसमये ,
किन्न स्मरसि त्वमात्मानम् ॥१६॥

भगवन् ! यहां मार्ग में दौड़ते हुये गिरकर तुम माता (यशोदा) के हाथों का सहारा लेने के लिये रोते हो। किंतु पतितों के उद्धार करने के समय तुम अपनी बात को क्यों भूल जाते हो। गुरु गिरते हुये तो तुम मां के हाथों का सहारा लेते थे, और पापियों के उद्धार करने में उन्हें स्वयं सहारा क्यों नहीं देते ? यह कहां का न्याय है।

यस्य तनूरुहकुहरे नटनं ,
ब्रह्माण्ड कोटीनाम् ।
तमिमं गोप कृशांगी ,
लोचन भंगी विघूर्णयति ॥ १७ ॥

जिसके रोम कूपों में करोड़ों ब्रह्माण्ड नाचा करते हैं उन्हीं भगवान कृष्ण को गोपियां तिरछी चितवन से देखती हैं।

नवीन घन सुन्दरे त्रिभल हेम पीतांबरे,
त्रिभंगिमकलेवरे मुरलिनं बि बिम्बाधरे,
मनोज्ञ रसलंपटे, सखि विलोकय वंशीवटे ।
मनो मम निरंतरं मदनमोहने मज्जतु ॥ १८ ॥

नवीन मेघ के सदृश श्याम, स्वच्छ स्वर्ण के समान पीताम्बर ओढ़े, त्रिभंगी शरीर वाले, मुरली बजाने वाले, मनोज्ञरसलंपट कृष्ण को वंशीवट में देखकर मेरा मन निरंतर उन्हीं मदन गोपाल में डूबा जाता है।

अंहो हंति ज्ञानवृद्धिं विधत्ते ,
धर्मं धत्ते काममर्थं च सूते ।
मुक्तिं दत्ते सर्वदोपास्यमाना ,
पुंसां श्रद्धा शालिनी कृष्णभक्तिः ॥१९॥

श्रद्धा पूर्वक सर्वदा उपासना की गई भगवान कृष्ण की भक्ति मनुष्यों के पापका नाश करती है, ज्ञानकी वृद्धि करती है, धर्मको उत्पन्न करती है, काम अर्थको देती है और अंत में मुक्ति देती है।

तरणिजा तटे विहारिणी ,
व्रज विलासिनी विलासतः ।
मुररिपोस्तनुः पुनातु वः ,
सुकृतशालिनां मनोरमा ॥२०॥

यमुना के किनारे विलासपूर्वक ब्रज युवतियों के साथ विलास करने वाला और सुकृतियों के मनको हरण करने वाला भगवान कृष्ण का शरीर तुम लोगों की रक्षा करे ।

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा ,
रुष्टेन्द्रवज्राहति मुक्त वृष्टेः ।
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं ,
चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ॥ २१ ॥

जिसने रुष्ट होते हुये इन्द्र के व्रज के व्याघात के साथ व्रजमें होती हुई वृष्टि के समय बायें हाथ से गोवर्धन उठा लिया था, जिसने गौ समूह और गोपकुलकी रक्षा की, वह चक्रपाणि कृष्ण हम लोगों की रक्षा करें ।

काचिन्मुरारेर्वदनारविन्दं ,
सक्रान्तमालोक्य जले नवोढा ।
व्यक्तं सलज्जा परिचुम्बितुं तत् ,
तदर्थमेवांभसि निर्ममज्ज ॥ २२ ॥

कोई नवोढ़ा स्त्री जमुना के किनारे पर खड़े हुए कृष्ण के मुख रूपी अरविंद को जलमें प्रतिबिंबित देखकर, प्रकट में उसके चुंबन करने में लज्जा करती हुई उस (मुख) के चूमने के लिये जल में डुबकी लगाने लगी ।

नारायणस्य सन्ततमुद्गगीतिः संस्मृतिर्भक्त्या ,
अर्चायामासक्तिर्दुस्तर संसार सागरे तरणिः ।

निरंतर, भक्ति के साथ कृष्ण का कीर्तन, स्मरण, और भजन में प्रेम, दुस्तर संसार से तारने के लिये नौका है ।

तरलवतंसाश्लिष्ट स्कन्ध-
श्चलतरपञ्भटिका कटिबंधः ।
मौलिचपलशिखिचन्द्रकवृन्दः ,
कालिय शिरसि ननर्त मुकुन्दः ॥२४॥

चंचल कुंडलों से श्लिष्ट है कंधा जिसका, और अत्यंत चंचल है कमर में पहिरी हुई क्षुद्र घंटिका जिसकी, चंचल हैं मोरके पंख जिसके ऐसे भगवान कृष्ण कालीनाग के शिरपर नाचे ।

श्रीनंदनयनानन्दं, यशोदानंदकंदुकम् ।
गो-गोप-गोपिका-गोपं, राधानाथं नमाम्यहम् २५

नंदके नयनों के आनंद देने वाले यशोदा के आनंद, गेंद और गौ, गोप, तथा गोपियों के रक्षा करने वाले कृष्ण को नमस्कार है ।

भक्तिमद्विलोकन प्रणयिनी, नीलोत्पल स्पर्धिनी
ध्यानालंबनतां समाधिनिरतैर्नीते हितप्राप्तये ।
लावण्यस्यमहानिधीरसिकतांलक्ष्मीदृशोस्तन्वती,
युष्माकं कुरुतां भवार्तिशमनं नेत्रेतनुर्वा हरेः २६

भक्ति से युक्त नम्र पुरुषों को देखने में प्रीतिवाले, नीलोत्पल सदृश, समाधि निरत योगियों के द्वारा हित प्राप्ति के लिये ध्यान किये गये, सुन्दरता के समुद्र और लक्ष्मी के नेत्रों को आनंद दायक भगवान कृष्ण के नेत्र और उनकी मूर्ति तुम लोगों की संसार सागर की पीड़ा को शांति करें ।

बलिदमनविधौ बभौ संगता ,
पदजलरुहियस्य मंदाकिनी ।
सुरनिहित सितांबुजस्रङ्निभा ,
हरतु जगदघंस पीताम्बरः ॥ २७ ॥

बलिके छलने में जिसके चरण कमल में स्थित गंगा, देवताओं से अर्पण किये हुये श्वेत कमलों के सदृश सुशोभित है । वह पीतांबर धारी कृष्ण पापको हरे । अपूर्ण

# गायत्री

**ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं । भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥**

गायत्री मन्त्र में १ ॐ, २ भूः, ३ भुवः, ४ स्वः, ५ तत्, ६ सवितुः, ७ वरेण्यम्, ८ भर्गो, ९ देवस्य यह नौ नाम हैं। इन नौ नामों में भगवान् की स्तुति की गई है। 'धीमहि' उपासना है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' यह प्रार्थना है। इसमें पांच अवसान हैं। "ओ३म्" यहां प्रथम अवसान है। 'भूर्भुवः स्वः' दूसरा, तत्सवितुर्वरेण्यम्' तीसरा, 'भर्गो देवस्य धीमहि' चौथा, 'धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ' यहां पांचवां अवसान है। प्रत्येक अवसान पर मन्त्र जपते समय कुछ ठहरना चाहिये।

ओं=सर्वव्यापक, सब की रक्षा करने वाला।

भूः="भूरिति सन्मात्रमुच्यते" सत्य स्वरूप।

भुवः="भुव इति सर्वं भावयति प्रकाशयति इति व्युत्पत्या चिद्रूपमुच्यते" चैतन्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप।

स्वः="सुष्ठीयते इति व्युत्पत्या स्वरिति सुख स्वरूप मुच्यते" सुख स्वरूप।

तत्=वह अनन्त परमात्मा।

सवितुः=सबको उत्पन्न करने वाला प्रेरणा करने वाला।

वरेण्यम्=ग्रहण करने योग्य, तारीफ के लायक।

भर्गो=सब पापों को भर्जन नाश करने वाला, शुद्ध तेजः स्वरूप।

देवस्य=प्रकाश और आनन्द का देने वाला, दिव्य स्वरूप ऐसे परमात्मा का।

धीमहि=हम सब ध्यान करते हैं।

धियः=बुद्धियों को।

यः=वह परमात्मा।

नः=हमारी।

प्रचोदयात्=धर्मार्थ काम मोक्ष में प्रेरणा करे, संसार से हटा कर अपने स्वरूप में लगावे और शुद्ध बुद्धि प्रदान करे।

स्वामी दयानन्दजी ने गायत्री का यह अर्थ किया है।

भूः="भूरिति वै प्राणः" जो प्राणों का भी प्राण।

भुवः="यः सर्वं दुःखं अपानयति" सब दुःखों से छुड़ाने हारा।

स्वः="यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति" स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सर्वसुख की प्राप्ति कराने हारे।

सवितुः="यः सुनोति उत्पादयति स सविता' सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता।

देवस्य="यो दीव्यति स देवः" कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय कराने-हारे परमात्मा का।

वरेण्यम्="वरतु महँ" अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य।

भर्गः=सब क्लेशों को उपशम करने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप।

धत्=उसको हम लोग।

धीमहि="धरेमहि, ध्यायेमः" धारण करें।

यः=वह जो परमात्मा।

नः=हमारी।

धियः=बुद्धियों को।

प्रचोदयात्=उत्तम गुण कर्म स्वभाव में प्रेरणा करे।

गायत्री मन्त्र का सविता देवता है, अग्नि मुख है, विश्वामित्र ऋषि है, गायत्री छंद है और उपनयन, प्राणायाम और जप में विनियोग (इस्तेमाल) है।

यह गायत्री मन्त्र आदि मन्त्र है। अन्य मतों की तो बात ही क्या है वेद में भी इसके अतिरिक्त ऐसा कोई मन्त्र नहीं है जिसमें एक ही मन्त्र में भगवान की स्तुति, उपासना और प्रार्थना तीनों हों। भगवान के भजन में पहले भगवान की स्तुति की जाती है, फिर उपासना ध्यान किया जाता है और पश्चात् भगवान् से प्रार्थना की जाती है। गायत्री मन्त्र में स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों हैं। गायत्री ही एक ऐसा मन्त्र है जो हिंदू मात्र के लिये एक मन्त्र हो सकता है। भगवान वेद में आज्ञा करते हैं "समानो मन्त्रः" 'कि तुम्हारा मन्त्र एक हो' अतः हिंदूमात्र का एक गायत्री मन्त्र होना चाहिये।

मनु भगवान् ने कहा है कि विधि यज्ञ से जप यज्ञ दशगुणा फलदायक है, इससे भी जिसमें होठ ही हिलें शतगुणा और मानसिक सहस्रगुणा फल देता है। लेटा लेटा, बैठा बैठा, डोलता फिरता जिसमें अवस्था में हो मनुष्य गायत्री का मानसिक जप कर सकता है। इसके जपने में किसी प्रकार का भी विधि निषेध नहीं है। इसके जपने से सब कामना पूरी होती हैं और अन्त में स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस मन्त्रसे प्रातः मध्याह्न, सायंकाल और अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार चार बार सन्ध्या करनी चाहिये।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक् सिद्धिर्भवति।

इति उपनिषत्।

गायत्री का सायंकाल में जप करने वाला दिन में किये हुये पापों का नाश करता है। प्रातःकाल में जप करने वाला रात्रि में किये हुये पापों का नाश करता है। दोनों समय जप करने वाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रि में जप करने से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिये गायत्री से प्रत्येक हिंदू को चार बार सन्ध्या करनी चाहिये। इससे पारलौकिक पुण्य तो होगा ही, साथ ही लौकिक लाभ भी यह होगा कि यदि अर्द्ध रात्रि के समय सन्ध्या करने लग जांय तो फिर चोर आदि का भय भी नहीं रहेगा। कारण कि जितने भी चोरी आदि पाप कर्म होते हैं वे प्रायः इसी समय में ही हुआ करते हैं। उस समय यदि सन्ध्या के अर्थ जागरण हो जाय तो फिर इसका भय ही नहीं रहता।

नौ नामों से भगवान् की स्तुति करे फिर "धीमहि" से भगवान् का इस प्रकार ध्यान करे।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमस्मि ओं खं ब्रह्म"

कि जो सूर्य में स्वर्ण जैसे रंग का प्रकाश स्वरूप पुरुष है वह मैं हूं। फिर 'धियो यो नः

प्रचोदयात्' से प्रार्थना करे। अर्थ सहित चाहे एक बार जपो वह भी कल्याण के देने वाला है। वेद का मन्त्र है, भगवान् की आज्ञा है, इससे पाप नष्ट होते हैं और ज्ञान का प्रकाश होता है।

## गायत्री का महात्म्य

ओं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रीपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति ॥ तस्या उपस्थानं उपेत्य स्थानं नमस्करणं अनेन मन्त्रेण कर्तव्यम्। हे गायत्रि! त्वं त्रैलोक्यात्मपदेनैकपद्यसि भवसि। त्रैविद्यपादेन त्वं द्विपदी प्राणाद्यात्मकपादेन त्वं त्रिपदी। मण्डलान्तरगतपुरुषलक्षणेन पादेन त्वं चतुष्पदी असि। ऐतैश्चतुर्भिः पादैः त्वं उपासकैः पद्यसे ज्ञायसे। निरुपाधिकेन स्वेत्मना त्वमपदसि। पद्यते येन तत्पदं न विद्यते पदं यस्याः सा त्वं अपदसि। यस्मात् केनापि न ज्ञायसे नेति नेत्यादि लक्षणत्वात्। तुभ्यं व्यवहार विषयाय दर्शताय पदाय परोरजसे नमोऽस्तु नमस्कारोऽस्तु। त्वप्राप्तिविघ्नकरोऽदः पाप रूपस्य शत्रोर्यत्त्वमाप्ति विघ्नकर्तृत्वं मम मा प्रापन्मा प्राप्नोतु ॥१

ऊपर के मन्त्र से नमस्कार करनी चाहिये। हे गायत्री! तू त्रैलोकी रूप से एक पदवाली है, त्रिविद्या रूप पाद से दो पैर वाली है, प्राणात्मक पाद से तीन पैर वाली है, मण्डलगत पुरुष रूप से चार पैर वाली है! इन चार पैरों से तुम उपासकों से जानी जाती हो। लेकिन उपाधि रहित स्वयमात्मरूप से बिना पैर वाली हो। क्योंकि किसी से तुम जानी नहीं जा सकती हो सब वेदों में नेति नेति ऐसा कहने से। व्यवहार के दिखाने के लिये लोकों से परे आपको नमस्कार हो तुम्हारी प्राप्ति में कोई विघ्न पाप रूपी शत्रु का न होवे ॥ १ ॥

एतद्ध वै स्मर्यते बुडिलं अश्वतराश्वस्यापत्यमाश्वतराश्वि प्रत्युवाच। अहो आश्चर्यमेतद् यस्त्वं गायत्री विदस्मीत्यब्रूथा अथ कथं प्रतिग्रह दोषेण हस्तीभूतो वहसि। बुडिल आह हे सम्राडस्या गायत्र्या मुखमहं न विदाञ्चकार न विज्ञातवानस्मि। तमुवाच इतर आह तस्या गायत्र्या अग्निरेव मुखम्। सर्वं पाप जातं सम्यग्भक्षयित्वाऽग्निवच्छुद्धः पापसंस्पर्शरहितः। एवं गायत्र्यात्माऽजरोऽमरश्च संभवति। क्रममुक्तिफलं स्वं दर्शयति ॥ २ ॥

ऐसा कहा जाता है कि बुडिल से राजा जनक ने पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि "मैं गायत्री के जानने वाला हूँ" ऐसा तुम कहते थे फिर क्यों प्रतिग्रह के दोष से हाथी होकर मुझे ले जाते हो? बुडिल बोला हे राजन्! मैं इस गायत्री के मुख को नहीं जानता था। उसके ऐसा कहने पर जनक ने कहा कि उस गायत्री का अग्नि ही मुख है। सब पापों के समूहों को अच्छी तरह से नष्ट करके अग्नि की भान्ति शुद्ध पाप स्पर्श से रहित होकर गायत्री के प्रभाव से आत्मा अजर अमर हो जाता है। मुक्ति का फल दिखलाते हैं ॥ २ ॥

कूर्म पुराणे—

प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

सत्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः ॥३॥

प्रधान, पुरुष और काल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सत्व रज तम यह क्रम से व्याहृति हैं ॥३॥

गायत्र्या च पूकारमाह योगी याज्ञवल्क्यः-
ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
गायत्रीं प्रणवश्चान्ते जपोऽयं उदाहृतः ॥४॥

योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं:-

प्रथम ओंकार का उच्चारण करके पीछे भूर्भुवः स्वः उच्चारण करे फिर गायत्री और फिर प्रणव का उच्चारण करे। यह जप कहलाता है ॥४॥

तेन आद्यन्तयोः प्रणवो जप्यः ॥ ५ ॥

इस वास्ते आदि और अन्त में प्रणव जपना चाहिये ॥ ५ ॥

मांगल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकाम प्रसाधनम् ।
ओंकारः परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः ॥६॥

मांगलीक, पवित्र करने वाला, धार्मिक तथा सब कार्यों को सिद्ध करने वाला ओंकार रूप परब्रह्म सब मन्त्रों का नायक है ॥ ६ ॥

यथा पर्ण पलाशस्य शंकुनैकेन धार्यते ।
तथा जगदिदं सर्वमोंकारेणैव धार्यते ॥ ७॥

जिस प्रकार से पलाश का पत्ता एक शंकु के द्वारा ही धारण किया जाता है। उसी प्रकार से यह समस्त संसार ओंकार से धारण किया जाता है ॥ ७ ॥

जपेन दहते पापं प्राणायामैस्तथा मलम् ॥८॥

जप से पाप नष्ट होते हैं, और प्राणायाम से मल नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

सर्वमन्त्र प्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते ॥९॥

सब मन्त्रों के प्रयोग में 'ओं' यह आदि में प्रयुक्त किया जाता है। ९ ॥

सिद्धानाञ्चैव सर्वेषां वेद वेदान्तयोस्तथा ।
अन्येषामपि शास्त्राणां निष्ठाऽथोंकार उच्यते ॥

सब सिद्धों की और वेद और वेदान्तों की तथा अन्य शास्त्रों की भी निष्ठा ओंकार कहा जाता है ॥ १०॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयातित्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥११

'ओं' यह एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुवा तथा मेरा स्मरण करता हुवा जो शरीर छोड़ कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है ११ ॥

अथाहमर्थं गायत्र्या प्रवक्ष्यामि यथातथम् ।
द्विजोत्तमानां सद्भक्त्या जपादीनि प्रकुर्वताम् ॥

जप आदि करते हुये उत्तम द्विजों की सद्भक्ति से अब मैं गायत्री का यथार्थ अर्थ कहूंगा ॥१२॥

द्वाभ्यां विश्वास भक्तिभ्यां जपादीनां महत्तरम् ।
फलं भवेज्जपकृतामिति वेदेषु भाषितम् ॥ १३

विश्वास और भक्ति के द्वारा जप करने वालों को जपों का बहुत फल होता है यह वेदों में कहा है ॥ १३ ॥

तदिति द्वितीयैक वचनं अनेकजगदुत्पत्ति-स्थितिलयकारणीभूतमुपकथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डलाभिधेयं परं ब्रह्म अभिधीयते । सवितुरिति षष्ठ्यैकवचनं । सूञ् प्राणिप्रसवे सर्वस्यभूतजातस्य प्रसवितुः । वरेण्यं वरणीयं प्रार्थनीयम् । सततं ध्येयं भर्गः । भ्रंशो आपर्दने भृजि भर्जने, भ्राज् दीप्तौ, भर्गस्तेजः भजतां

पाप भंजन हेतुभूतम् । देवस्य वृष्टिदानादि गुण युक्तस्य धीमहि मध्ये चिन्तयामि निगम निरुक्त विद्यारूपेण चक्षुषा यो सावादित्यो हिरण्मयः पुरुषः सोऽहमिति चिन्तयामि ॥ १४ ॥

"तत्" यह द्वितीया का एक वचन है अनेक संसार की उत्पत्ति, स्थिति लय में कारण होता हुआ उपमा रहित सूर्य मण्डल नामक तेज परब्रह्म कहा जाता है। "सवितुः" यह षष्ठी का एक वचन है। सूञ् प्राणि प्रसवे इस धातु से बना है। समस्त संसारा का "वरेण्यम्" प्रार्थना करने योग्य, निरन्तर ध्येय "भर्ग=तेज, भजन करने वालों के पाप नष्ट करने में जो कारण है। "देवस्य"=वर्षा दानादि गुणों से युक्त को, "धीमहि"=हम चिन्तन करते हैं। निगम निरुक्त विद्या रूपी चक्षु से जो यह आदित्य में हिरण्मय पुरुष है सो मैं हूं यह ध्यान करता हूं ॥ १४ ॥

यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यं तदुपास्महे ।
तत्तेजो नो बुद्धीः श्रेयस्करेषु प्रचोदयात् ॥ १५

सूर्य देव का जो श्रेष्ठ तेज है उसकी उपासना करते हैं, वह तेज हमारी बुद्धि को अच्छे कामों में प्रेरणा करे ॥ १५ ॥

जपस्याभ्यन्तरे व्याख्या स्मर्तव्या मनसा द्विजैः।
स्मरणात्सर्वपापानि पूणश्यन्ति न संशयः ॥१६

जप के अन्दर द्विजों को व्याख्या याद करनी चाहिये। स्मरण करने से सब पप नष्ट होजाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १६ ॥

गायन्तं त्रायते यस्मात् ॥ १७ ॥

गायत्री गाने वाले को संसार से पार करती है ॥ १७ ॥

सरस्वतीति नाम्ना च समाख्याता महर्षिभिः।
सवितृ प्रकाश करणात्सावित्रीत्यभिधा भवेत् ॥

महर्षियों ने गायत्री को सरस्वती नाम से कहा है। सविता की प्रकाश करने से सावित्री कहा है ॥ १८ ॥

तस्मादियं सदोपास्या निशादिवसयोर्द्विजैः ।
गायत्री सन्धिवेलायां सैव सन्ध्येति कीर्तिता ॥

इस वास्ते द्विजों को सदा इसकी उपासना करनी चाहिये। गायत्री सन्धि वेला में सन्ध्या कहलाती है ॥ १९ ॥

ब्रह्मकेशवरुद्रादि देवताभिरुपासिताम् ।
सन्ध्यां तां को न सेवेत विप्रः स्यादभिलाषुकः ॥

ब्रह्म, केशव और रुद्रादि देवताओं से उपासना की हुई गायत्री को इच्छा रखने वाला कौन ब्राह्मण नहीं जपै ॥ २० ॥

प्रातः सतारकां सन्ध्यां सायं सन्ध्यां सभास्कराम्
नोपास्ते यो द्विजः सन्ध्यां सोहि शूद्रत्वमाप्नुयात्

सहित तारों के प्रातःकाल की सन्ध्या को और सूर्य सहित सायंकाल की संन्ध्या को जो द्विज नहीं करता वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

उपास्ते सर्वपुण्यानि कृतवान् स भवेदलम् ।
सन्ध्योपास्तिं विना विप्रः पुण्यान्यन्यानि चाचरेत्
यस्तस्य तानि पापानि भवन्त्येव न संशयः ।

गायत्री की उपासना करता हुवा सब पुण्यों को प्राप्त होता है। सन्ध्योपासना के विना जो ब्राह्मण और पुण्यों को करता है वे उसके पाप ही होजाते हैं ॥ २२ ॥

नाशयेत् जन्मजनितं पापं दश जपात् मनोः ॥
पुराकृतं शतजपाद्गायत्र्यास्तु द्विजन्मनः ॥२३॥

मनुष्य के जन्म के पैदा हुये पाप दश गायत्री

मन्त्र के जाप से नष्ट हो जाते हैं ! और सौवार मन्त्र जपने से पूर्व जन्म का किया हुवा पाप भी नष्ट होता है ॥ २३ ॥

कृते युगेपि चैकस्मिन्सहस्रेण जपेन तु ।
सद्भक्त्या जपतस्तस्माद्गायत्रीं सर्वदा जपेत् ॥२४

कलियुग के अन्दर एक सहस्र जपसे भक्ति पूर्वक जपते हुये के सब पाप नष्ट होजाते हैं इस-लिये गायत्री को जपे ॥ २४ ॥

हिंसयाऽन्ये प्रवर्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया ,
यावन्तः कर्मयज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ।
ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२५

और यज्ञ हिंसा से प्रवृत्त होते हैं परन्तु जप यज्ञ हिंसा से प्रवृत्त नहीं होता जितने कर्म, यज्ञ, दान तप हैं वे सब जप यज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते ॥ २५ ॥

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान्भोगान् दद्यान्मुक्तिंच शाश्वती

जप से नित्य स्तुति किया हुवा देवता प्रसन्न होता है । प्रसन्न होकर के बहुत से भोग तथा शाश्वत मुक्ति को देता है ॥ २६ ॥

यक्षराक्षसवेतालप्रेतभूतपिशाचकाः ।
जपाश्रयं द्विजं दृष्ट्वा दूरं ते यान्ति भीतितः ॥

यक्ष, राक्षस, वेताल, प्रेत, भूत, पिशाच जप में बैठे हुवे द्विज को देखकर डरकर दूर चले जाते हैं ॥ २७ ॥

तस्माज्जपः सदा श्रेष्ठः सर्वस्मात् पुण्यसाधनात्

इसलिये सब पुण्य साधनों से जप ही श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वविद्या विशारदः ।
यथा धान्य धनोपेतो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥२९॥

सब पापों से मुक्त होकर धन धान्य से पूर्ण होकर के आनन्द पूर्वक सौ वर्ष तक जीवे ॥ २९ ॥

एतद्विधानं योऽधीत्य श्रावयेत् ब्राह्मणोत्तमान्
प्रीतिपूर्वं प्रयत्नेन ब्राह्मणो नियमेन च ।
अज्ञानेन प्रमादेन दुरितं यत्समुत्थितम् ।
तस्य तत्सकलं नाशं व्रजेदत्र न संशयः ॥३०॥

इस विधान को पढ़कर जो ब्राह्मण प्रयत्न और नियम से उत्तम ब्राह्मणों को सुनावे उसके अज्ञान तथा प्रमाद से पैदा हुये समस्त पाप नष्ट होजाते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३० ॥

अनागतं तु ये पूर्वामवनीताश्च पश्चिमाम् ।
सन्ध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः

जो विप्र प्रातःकाल तथा सयंकाल की सन्ध्या नहीं करते हैं वे ब्राह्मण किस तरह से स्मरण किये जाते हैं ॥ ३१ ॥

सायं प्रातः सदा सन्ध्यां ये न विप्रा उपासते ।
कामं तान् धार्मिक राजा शूद्र कर्मसु योजयेत् ॥

सयंकाल तथा प्रातःकाल की सन्ध्या को जो ब्राह्मण नहीं करते हैं धार्मिक राजा उनको शूद्र कर्म में लगावे ॥ ३२ ॥

भरद्वाजेन संक्षेपेण दर्शितः विस्तार भयात् ॥

भरद्वाज जी ने विस्तार के भय से संक्षेप से बताया है ॥ ३३ ॥

प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं च जपेत् ततः ।
समाहितमनास्तूष्णीं मनसा चापि चिन्तयेत् ॥

इसके बाद प्रणव तथा व्याहृति युक्त गायत्री का जप करे मन को एकाग्र करके चुपचाप मन से चिन्तन करे ॥ ३४ ॥

ध्यायेच्च मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न च चालयेत् ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥

मन ही मन मन्त्र का जप करे, जीभ और होठ को न हिलावे, शिर को तथा गर्दन को कंपावे नहीं तथा दांतों को न दिखावे ॥ ३५ ॥

विधियज्ञात् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥

विधि यज्ञ से जप यज्ञ दशगुणा श्रेष्ठ है सौ गुणा उपांशु और सहस्र गुणा मानस यज्ञ है ॥३६ ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमाऽर्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात् ॥

प्रातः काल की सन्ध्या सूर्य दर्श पर्यन्त सावित्री को जपता हुआ करे। और सायंकालकी सन्ध्या तारों के दीखने तक ॥ ३७ ॥

तिष्ठंश्चेद्वीक्षमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः ।
अन्यथा प्राङ्मुखः कुर्यात्समासीनःकुशासने ॥

प्रातःकाल की सन्ध्या सूर्य को देखता हुआ सावधान होकर करे। दूसरी पूर्वाभिमुख होकर कुशासन पर बैठ कर करे ॥ ३८ ॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
वशाजिने व्याधिनाशः सर्वं वै चित्रकम्बले ॥३९

कृष्ण मृग की चर्मपर ज्ञान सिद्धि, व्याघ्र की चर्मपर मोक्ष श्री, हस्ती की चर्म पर व्याधि नाश तथा चित्र कम्बल पर समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ३९ ॥

पादेन पादमाक्रम्य जपं नैव तु कारयेत्,
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो द्विजः ।
न च वाक्चपलश्चैव जपन्सिद्धिमवाप्नुयात् ४०

पैर के ऊपर पैर रखकर जप नहीं करे। चंचल हाथ पैर वाला तथा चपल नेत्र वाला और बहुत बोलने वाला, जप करता हुआ सिद्धि को प्राप्त नहीं होता ॥ ४० ॥

जान्वोरन्तरं सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकासनमुच्यते ॥

जानुओं के बीच में दोनों पैरों को अच्छी तरह करके तथा नम्र शरीर होकर बैठा हुआ स्वस्तिकासन कहाता है ॥४१॥

उर्वोर्मध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ ।
नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं पद्मासनमिदं स्मृतम् ॥

दोनों जंघाओं के बीच में पादतल रखकर ऊपर दोनों हाथ रक्खे और इधर उधर न देखकर नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगावे इसको पद्मासन कहते हैं ॥४२॥

वस्त्रेणाच्छाद्य स्वकरं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।
तस्य तत्सफलं जप्यं तद्धीनमफलं भवेत् ॥४३॥

जो कोई कपड़े से दायें हाथ को ढक कर जप करता है उसी का जप सफल कहाता है अन्यथा निष्फल होता है ॥४३॥

जपकाले त्वक्षमालां गुरोरपि न दर्शयेत् ॥४४॥

और जप के समय रुद्राक्ष की माला गुरु को भी न दिखावे ॥४४॥

गायत्री नाम पूर्वाह्ने सावित्री मध्यमे दिने ।
सरस्वती च सायान्हे सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता ॥

प्रातः काल गायत्री तथा दोपहर सावित्री और सायंकाल को सरस्वती के नाम से ही गायत्री तीनों समय सन्ध्यास्मरण की गई है ॥४५॥

गायत्री प्रोच्यते तस्मात गायन्तं त्रायते यतः ।

सवितृ द्योतनात् सैव सावित्री परिकीर्त्तिता ।
जगतः प्रसवितृत्वात् वाग्रूपत्वात् सरस्वती ॥

ऋग्यजुः

यह गायत्री इसलिये कहाती है कि यह गाने वाले को संसार से तिरा देती है तथा सविता (सूर्य) को द्योतन करने से इसको सावित्री कहते हैं। और जगत् को पैदा करने से तथा वाणी रूप होने से सरस्वती कहाती है ॥४६॥

सर्वात्मना हि या देवी सर्वभूतेषु संस्थिता ।
गायत्री मोक्ष हेतुर्वै मोक्षस्थानक लक्षणम् ॥४७

कूर्म पुराणम्

जो गायत्री देवी सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में आत्मा रूप से विराजमान है वह गायत्री ही मोक्ष का कारण है तथा मोक्ष स्थान का लक्षण है ॥४७॥

गायत्री निरतं हव्यकव्येषु विनियोजयेत् ।
तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥४८

गायत्री का प्रयोग सदा हव्य कव्यों में करना चाहिये। गायत्री के प्रयोग से उनमें पाप इस भांति नहीं ठहरता जैसे कमल पत्र पर जल बिन्दु नहीं ठहरता है ॥४८॥

यज्ञदान रतो विद्वान् साङ्गवेदस्य पाठकः।
गायत्री ध्यानपूतस्य कलां नार्हति षोडशीम् ४९

जो विद्वान अंग सहित वेदों का पाठ करता है तथा यज्ञ दान आदि में लगा रहता है वह गायत्री के ध्यान से पवित्रात्मा वाले की सोलहवीं कला के भी तुल्य नहीं है ॥४९॥

अस्मिन् चतुर्विंशत्यक्षराभावः तथापि "वरेण्यं" पदस्थं यवर्णमादाय चतुर्विंशति संख्या परिपूर्यते ॥ ५० ॥

इस गायत्री में चौबीस अक्षरों का अभाव है परन्तु वरेण्यं इस पद में यकार को पृथक् निकाल कर चौबीस की गणना की है ॥५०॥

वेदस्याध्ययनं कार्यं धर्मशास्त्रस्य चापि यत् ।
अजानतार्थं तत्सर्वं तुषाणां कण्डनं यथा ॥५१

वेद का अथवा धर्मशास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। उसके अर्थ के बिना जाने तुषों को कूटने के समान फल होता है ॥५१॥

यथा पशुर्भारवाही न तस्य भजते फलम् ।
द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते ॥५२॥

जिस तरह पशु किसी वस्तु को ढोता है परन्तु उसके फल से अनभिज्ञ है इसी भांति वेद के अर्थ को न जानने वाला द्विज वेद फल को प्राप्त नहीं होता ॥५२॥

पाठमात्ररतान्नित्यं द्विजातींश्चार्थवर्जितान् ।
पशूनिव च तान् प्राज्ञो वाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥

जो द्विज अर्थ को न जानते हुये पाठ मात्र में रत हैं पशुतुल्य उनको बुद्धिमान् पुरुष वाणी से भी आदर न करे ॥५३॥

गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यम् । इदं सर्वभूतं प्राणिजातं यत्किंच स्थावरं जङ्गमं वा तत्सर्वं गायत्री एव । शब्दरूपा सति सर्वं भूतं गायती गायत्री च शब्दायते त्रायते च रक्षति । अमुष्मात् मा भैषीः किं ते भयमुत्थितम् । सर्वतो भयान्निवर्त्यमानो वाचा त्रातः स्यात् । गायति च त्रायते च गायत्री । गानात् त्राणाच्च गायत्रीत्वम् । यद्यपि परमेश्वरः सर्वत्र अभिन्नरूपतया वर्तमानस्तथापि सम-

पासने एव विशिष्टफलप्रदः नान्यथा । इदमपि दृष्टान्ततया योगीयाज्ञवल्क्येन कथितम् ॥५४

इस जगत् में गायत्री से त्रिवर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य उत्पन्न हुये। यह सब कुछ प्राणीमात्र स्थावर तथा जंगम हैं सब गायत्री ही है। शब्द रूप होने से गायत्री सबकी रक्षा करती है। इस से मत डर तेरे भय क्यों उत्पन्न हुवा है सब तरफ से भय को हटा कर मन वाणी की रक्षक गायत्री है। गाने और तिराने से गायत्री कहाती है। मन से तथा रक्षा करने से गायत्री है। यद्यपि भगवान निराकार रूप से सर्वत्र वर्तमान हैं परन्तु उपासना करने से ही विशेष फल के देने वाले हैं। अन्य उपाय से नहीं यह बात योगी याज्ञवल्क्य ने दृष्टांत रूप से कही है ॥५४॥

गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यङ्गपोषणम् । निःसृतं कर्मसंयुक्तं पुनस्तासां तदौषधम् ॥५५॥

जैसे गौवों के शरीर में घी विद्यमान है परन्तु उनके अंगों का पोषक नहीं है और यदि उसी घी को निकाल कर काम में लाया जाय तो उनको औषध रूप होता है ॥५५॥

एवं स हि शरीरस्थः सर्पिर्वत् परमेश्वरः । विना चोपासनादेव न करोति हितं नृपु ॥५६॥

इसी तरह ईश्वर घी के समान शरीर में विराजमान है परन्तु ध्यान आदि के विना मनुष्यों का हित नहीं करता ॥५६॥

न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह । सोहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्

गायत्री को ब्रह्म से भिन्न न जाने तथा जिस किसी विधि से ऐसी उपासना करे कि मैं भी ब्रह्म ही हूं ॥५७॥

गायत्रीस्थ भर्ग पद प्रतिपाद्य ईश्वरः । अहं जीव रूपोऽस्मि भवामि, जीवेश्वरयोः अहंकार प्रतिबिम्बितत्वोपाधिरहितेन चिद्रूपेण ऐक्यं भावयन् उपासीत इति रघुनन्दनः ॥ ५८ ॥

गायत्री में स्थित भर्ग पद ईश्वर का प्रतिपादक है। और मैं जीव रूप से हूं। जीव तथा ईश्वर में अहंकार प्रतिबिम्ब को उपाधि से रहित तथा चैतन्य रूप से एक स्वरूप जानता हुवा उपासना करे। यह रघुनन्दन का मत है ॥५८॥

बहुषु उपायेषु गायत्री एव तदुपासनायाः प्रधानोपायः इति पाक् दर्शितेषु शास्त्रेषु प्रसिद्धम् विशेषतः गायत्र्यर्थः परंब्रह्म एतदर्थमपि अनेन मन्त्रेणैव उपासना श्रेयस्करी ॥ ५९ ॥

जो उपासना के बहुत से उपाय हैं उनमें गायत्री ही प्रधान उपाय है। यह प्राचीन शास्त्रों में प्रसिद्ध है। विशेष कर अर्थयुक्त गायत्री ही परब्रह्म है इसलिये भी इसी मंत्र से उपासना कल्याण प्रद है ॥५९॥

वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः। वाचकेपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति ॥ ६०

उस ईश्वर को वाच्य कहते हैं और ओंकार वाचक है। वाचक के भी जान लेने पर वाच्य ही प्रसन्न होता ॥६०॥

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा याच देवता। तदाधारं भवेत्तस्य देवतं देवतोच्यते ॥ ६१ ॥

जिस २ मन्त्र का जो देवता होता है वह मंत्र उसके आधार रहता है इसलिये वह उसका देवता कहाता है ॥६१॥

पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च ।
अनेनैव तु कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते ॥६२॥

पहले समय में मंत्र कर्म की सिद्धि के लिये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिये इसका जप करना चाहिये यह विनियोग कहाता है ॥६२॥

सविता देवता तस्या मुखमग्निस्तथैव च ।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री तु विधीयते ॥

उस गायत्री का सूर्य देवता है और अग्नि मुख है तथा विश्वामित्र ऋषि है और गायत्री छंद कहा है ॥६३॥

विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः ।
विनियोगोपनयने प्राणायामे जपे तथा ॥६४॥

विश्व अर्थात् संसार संसार का मित्र होने से विश्वामित्र प्रजापति कहाता है। इस का इस्तैमाल जप, प्राणायाम तथा यज्ञोपवीत के समय बताया है ॥६४॥

ब्राह्मण सर्वस्वे विष्णुधर्मोत्तरे दर्शितम्:-
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पञ्चबुद्धीन्द्रियार्थाश्च भूतानां चैव पंचकम् ॥
मनो बुद्धि स्तथैवात्मा अव्यक्तं च यदुत्तमम् ।
चतुर्विंशतिरेतानि गायत्र्या अक्षराणि च ।
प्रणवं पुरुषं विद्धि सर्वगं पञ्च विंशकम् ॥६८॥

ब्राह्मण सर्वस्व विष्णु धर्मोत्तर में दिखाया है। पांच कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों के विषय तथा पंच भूत व मन बुद्धि तथा आत्मा और सर्व श्रेष्ठ अव्यक्त (ईश्वर) यह चौबीस गायत्री के आधार हैं। और सर्व व्यापक आदि पुरुष ओंकार का पच्चीसवां जानो ॥६५॥

सारभूतास्तु वेदानां ग्रन्थोपनिषदो मताः ।
तान्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥६६॥

चारों वेदों का सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का सार व्याहृति सहित गायत्री है ॥ ६६॥

एवं वस्तु विजानाति गायत्री ब्राह्मणस्तु सः ।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद् वेदानामपि पारगः ॥ ६७ ॥

इस प्रकार से जो गायत्री को जानता है वह ही ब्राह्मण है और जो नहीं जानता वह चारों वेदों का पारगामी भी क्यों नहीं हो शूद्र है।

या सन्ध्या सैव गायत्री द्विधा भूता व्यवस्थिता ।
सन्ध्या उपासिता येन विष्णुस्तेन उपासितः ॥ ६८ ॥

जो गायत्री है वह संध्या है और जो संध्या है वही गायत्री है। जिसने गायत्री की उपासना करली उसने विष्णु की उपासना करली ॥ ६७ ॥

गोभिल ऋषि कहते हैं:-

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा वाभिजायते ॥ ६९ ॥

जिसने गायत्री को नहीं जाना और उपासना नहीं की वह जीता हुवा शूद्र है और मरकर कुत्ते की योनि को प्राप्त होगा ॥ ६८ ॥

गायत्री गीयते तस्मात् गायन्तं त्रायते यतः ॥ ७० ॥

इसका नाम गायत्री इसीलिये है कि यह गाने वाले को संसार सागर से पार कर देती है ॥६९ ॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ७१ ॥

गायत्री वेद की माता है, गायत्री पाप नष्ट करने वाली है गायत्री के अतिरिक्त भूलोक में तथा स्वर्ग लोक में पवित्र करने वाला और नहीं है ॥७०

# उपदेशामृत

[ ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी ]

(१) जब साधक की दृष्टि में ईश्वर के दर्शन का महत्त्व विशेष रूप से दिखाई देता है तब साधक का मन कमल पुष्प के समान खिलजाता है, पश्चात् उसके देखने के मार्ग में जो कुछ आता है, उसकी तरफ वह दृष्टि नहीं करता।

(२) प्रभु के जो प्रेमी हैं, उन भगवत्प्रेमियों के भावावेश की दशा वर्णन नहीं हो सकी। श्रद्धालुओं की स्थिति प्रेमी भक्तों से न्यून है उनकी दशा भी ठीक ठीक समझ में नहीं आसकी। निश्चयात्मक ज्ञान और निदिध्यासन द्वारा अनुभव किये हुये भाव तो मात्र साक्षात्कार के आरंभ की ही अवस्था है।

(३) अज्ञ बिना चाहे मनुष्य जीता भी रहे परंतु जो मनुष्य अपने अंतःकरण को साधु समागम से, महात्माओं के चरित्रों से वंचित रखता है, वह तो मरा हुआ ही है।

(४) एक विरक्त से एक ने पूछा 'ईश्वर का मार्ग कौन सी दिशा में है ? उत्तर मिला तेरी नाक की सीधमें है' भाव यह है कि जिधर और जहां तू देखता है, उधर और वहां ईश्वर ही है।

(५) जो मनुष्य भगवत् की बात करता है, भगवत् का ही कार्य करता है, और जो कुछ मांगता है, भगवत् से ही मांगता है वह मनुष्य पूर्ण तत्त्वज्ञानी है।

(६) जो मनुष्य पूर्ण निष्काम होकर भगवत् की शरण लेता है, उसके अन्तःकरण में ही भगवत् का प्रेम प्रवेश कर सका है क्योंकि जिसको भगवत् प्राप्ति की इच्छा होती है, वह भगवत् के सिवाय अन्य वस्तुओं की तरफ मुख नहीं करता।

(७) तुम्हारी इच्छा हो चाहे न हो, भगवत् प्राप्ति किये बिना तुमको छुट्टी नहीं मिल सकी। जब तक तुमको भगवत् के दर्शन न होंगे तब तक तुम क्लेश ही पाया करोगे।

(८) भगवत् सर्वदा तुम्हारा कल्याण चाहते हैं, तुमको इन्द्रियां दी हैं, इन्द्रियों का दुरुपयोग सदुपयोग बताया है, लाभ क्या है, हानि क्या है, यह भी बताते रहते हैं और बताते रहेंगे, तुम्हारी इन्द्रियों को अपने वश में करेंगे, पश्चात् तुम्हारी अहंता ममता और तुम्हारे अस्तित्व को भी अपने अधीन करेंगे और तुम्हारे स्थान पर आप ही विलास करेंगे तब तुम समझ सकोगे कि सर्वेश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्त है।

(९) प्रत्येक बिका हुआ दास अपने मालिक को छोड़कर स्वतंत्र होना चाहता है किंतु सच्चा भगवत् भक्त तो भगवत् का दासत्व रूप बंधन ही चाहता है क्योंकि जो कोई भगवत् के दासत्व में बंधा हुआ होता है, वह ही सुख शान्ति में रहता है और जो छुटा हुआ रहता है, वह सर्वदा संकट उठाता है और एकबार के बदले बारंबार ठोकरें खाता रहता है।

# भक्ति का क्षेत्र

[ ले० श्री प्रभूदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम ]

आज हम सामाजिक क्षेत्र में उतरते हैं तो एक भारी त्रुटि दृष्टि पड़ती है। जहां संसार में नाना कार्य क्षेत्रों में पूर्णता का आभास झलकता है वहां अनेकों क्षेत्रों में भारी अपूर्णता भी भरी दीखती है क्योंकि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो वर्तमान सृष्टि में ईश्वर के सिवाय सबकी अपेक्षा अधिक पूर्णतर है उसे अपूर्णता व पतन स्वभाव से अप्रिय है। किन्तु वह अपने स्वभाव के विपरीत भी कई कारणों से विवश होकर अस्वाभाविक अपूर्णता व अरोचक पतन की ओर बढ़ता है। भाव यह है कि मनुष्य जिस काम को अच्छा देखना व करना चाहता है वह उससे विपरीत होता है। भारत के बहुत से पुरुषों की यह कामना है कि देश की सामाजिक दशा अच्छी हो और आर्थिक संकट का नाश हो किन्तु इसके विपरीत समाज का भारी ह्रास व अर्थ का घोर संकट उपस्थित हो रहा है। विचारना यह है कि वर्तमान स्थिति में किस बात की न्यूनता है और वह किस प्रकार पूरी की जावे। बड़े बड़े विचारशील महापुरुषों के अनुभव से यही सिद्ध होता है कि भारत की शिक्षा बहुत शिथिल है। यही कारण है कि समाज के मुख्य पहलू युवकों का ध्यान और ही झंझटों से नहीं छुटता। जीवन का सारा दारोमदार पहली सीढ़ी यानी बाल्यावस्था पर है। समाज का उद्धार व पतन बालकों पर निर्भर है। कोरे कागज पर जो चित्र खींचा जायगा वह ही साफ़ २ दृष्टि पड़ेगा। जिस देश ने सिर उठाया, बालकों की बदौलत, जिस समाज ने प्रतिष्ठा पाई बालकों की कृपा से। यहां पर भी प्राचीन गौरव का बालकों ही से मुख उजला हुवा है। राम कृष्ण आदि महान व्यक्ति बालक ही थे। सब जानते हैं मकान का दारोमदार उसकी नींव पर होता है। इसलिये विचारना चाहिये कि नींव किस प्रकार सुदृढ़ व चिरस्थाई बन सकती है।

पहले कहा गया है कि शिक्षा का अभाव सब से अधिक खटकने वाला है। जिस समाज में जितनी शिक्षा अधूरी होगी वह समाज उतना ही हीन होगा। इसके पुनरुद्धार के लिये ऐसे परिश्रम की आवश्यकता है कि जो अपने पूर्व गौरव का अनुगामी हो साथ ही इसके समय का भी ध्यान हो। यह बुद्धि का क्षेत्र जब समाज को प्राप्त होगा तभी समाज शिर उठा सकेगा। प्राचीन गौरव हमको भक्ति के विशाल क्षेत्र में उतारता है। यद्यपि सामयिक उत्तेजक विचारों से प्राचीनता को धक्का दिया जाता है किन्तु समाज के सुधार के लिये गम्भीर विचारणा से प्राचीन उद्देश्य पथ प्रदर्शक दीखेंगे। जीवन का पहला काल शैशव है जिसमें भी आज दस पंद्रह साल के बाद बच्चे

की ए. बी. सी. डी. आरम्भ होती है। प्रथम तो वर्तमान शिक्षा में सब प्रकार की भक्ति का पूरा अभाव है ही दूसरे साथ ही साथ अधोगति की ओर अग्रसर होना स्वाभाविक सा हो रहा है। मातृ भक्ति, देशभक्ति, नरेश भक्ति, और महेश भक्ति इत्यादि सभी भक्तियों का आज की शिक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं। क्या ये स्वाभाविक उत्पन्न होंगी, नहीं स्वाभाविक तो स्वार्थ साधन में प्रवृत्ति होगी जो आज शिक्षा द्वारा कराई जा रही है। कठिनता व परतन्त्रता के कामों में स्वाभाविक प्रवृत्ति होना बहुत दुर्लभ है।

शिक्षा का प्रादुर्भाव आत्मा व समाज के उद्धार के लिये हुवा था। उदर पूर्ति के लिये उपादेय कला ( शिल्पकारी ) का प्रादुर्भाव किया गया था। अबतो सबमें उलट फेर होरहा है। अष्टावक्र का स्वाध्याय माता के पेट से ही प्रारम्भ हुवा और आत्मगौरव का कितना जाज्वल्यमान उदाहरण हुवा। बुद्ध भगवान् की शिक्षा ने देशभक्ति के क्षेत्र में कितना भारी मैदान मारा। शंकरस्वामी की थोड़ी सी आयु देश की काया पलटने में कितनी समर्थ हुई यह किसी से अज्ञात नहीं है। स्वामी दयानन्द जी का भक्ति क्षेत्र में पदार्पण करना कितना महत्त्वपूर्ण हुवा यह सब भावुक हृदय अनुभव करते है। वर्तमान का सभ्य समाज प्राचीन शास्त्रों की ओर अवहेलना पूर्ण दृष्टि से देखता है। वास्तव में वह उनके महत्व को नहीं समझता। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि पूर्वकाल के समाज ने यह नियम कर रक्खा था कि प्रत्येक मनुष्य देश, राजा, व ईश्वर का कर्जदार है। साथ ही इसके अपने माता पिता का कितना ऋणी है यह भी सब को ज्ञात होता था। यद्यपि वर्तमान में इनमें से एक भी ऋण भयंकर प्रतीत होता है, किन्तु वह शिक्षा जो माता के पेट से आरम्भ होती थी पूर्ण सामर्थ्य वाली व अद्भुत चमत्कारिणी होती थी। आज एक कॉलेज का स्टूडेन्ट अपनी शिक्षा को समाप्त करके घर पर जाता है कल पेट का किंकर होता है। दैवयोग से नौकरी लगजाती है तो दुःखं सुखं जीवन का निर्वाह हो जाता है यदि नहीं लगी तो आत्महत्या ( खुदकशी ) तक करके जीवन की बेड़ी सुलझाते हैं। आत्म विकाश, समाज सेवा, देश भक्ति, ईश्वर प्रेम की गन्ध तक नहीं लगती। उधर प्राचीन विद्यार्थी वरतन्तु ऋषि का शिष्य कौत्स चौदह विद्या पढ़कर गुरु से दक्षिणा चुकाने का अनुरोध करता है। गुरु सेवा से ही अत्यन्त प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रहे हैं किन्तु शिष्य बिना दक्षिणा भेंट किये जाना नहीं चाहता। गुरु चौदह विद्याओं के बदले में चौदह क्रोड़ मुद्रा दक्षिणा में मांग लेते हैं। बड़े प्रसन्न चित्त से आश्रम का ब्रह्मचारी गुरु की दक्षिणा चुकाने को प्रस्थान करता है। उसके दिलमें रंचक भी चिन्ता नहीं कि कहां से लाऊंगा कैसे चुकाऊंगा आत्मविकाश की ज्योति से उसे संसार के सारे खजाने अपने ही जचते हैं। अठारह क्रोड़ मुद्रा लाकर सेवा में उपास्थित करता है। यह है विद्या जिससे आत्मा का विकाश, समाज पर आधिपत्य, राजाओं पर प्रभाव, ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

भक्ति नाम सेवा का है। मनुष्य को यहां किस २ की सेवा करनी चाहिये यह "अधीति बोधाचरण प्रचारणैः" आचरण की कसौटी पर चढ़ी हुई शिक्षा से ही उसको ज्ञात हो सकती है। जब तक समाज का सेवा भाव विपुल नहीं होगा तबतक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती भक्ति का विशाल क्षेत्र जब तक समाज का अनिवार्य अंग न होगा तब तक यूंही चुंधियाये नयनों से इधर उधर ताकना होगा। यह धार्मिक शिक्षा

जबतक नगर २ व ग्राम २ में न फैलाई जायगी तब तक स्वार्थ परायणता भारत से कुच न कर सकेगी। भारत के कोने में आज संकुचित स्वार्थ परायण जनों की टोलियां शिकार के लिये बहेलियों की तरह समाज को अपने जालमें फंसाने की ताक में लगी हुई हैं। यह घोर स्वार्थान्धता समाज की सबसे अधिक घातिका है। तब तक संगठन की संभावना नहीं की जासकती जबतक कि इस प्रकार के विरोधियों का मुकाबला न किया जाय। वर्तमान में समाज को ऐसे कार्यक्रम की आवश्यकता है जो सुदृढ़ रूप से सब प्रकार की भक्ति का सहयोगी हो। जब तक शक्ति के अनुसार सरल कार्य क्षेत्र आरम्भ न होगा तब तक विशाल कार्य क्षेत्रों में हाथ बढाना भारी भूल है। भक्ति के क्षेत्र में सेवा व प्रेम के द्वारा बहुत शीघ्र ही सफलता संभव है। इसमें सबसे प्रथम ऐसे सैनिकों को शिक्षा देनी चाहिये जो उन्नतिशील व शक्तिशाली हों। भारत का ग्राम संघ प्रायः सभी सामाजिक क्षेत्र से पृथक् सा है। यदि ग्रामों में यह भक्ति क्षेत्रों खोले जावें तो सबसे अधिक सफलता हो। भक्ति क्षेत्रों की विशाल आयोजना में देश के प्रमुख नेताओं का ध्यान अवश्य होना चाहिये, जिससे कार्य में सरलता हो जाती है। आज की कर्तव्यविमूढता हमारे सारे कार्य क्षेत्रों में भारी रुकावट कर रही है। शिक्षा में वह शक्ति कूट २ कर भरी होनी चाहिये। जो कि मृतप्राय समाज में बिजली की भांति शक्ति संचार कर सके। भक्ति का पहलू इतना प्रबल होना चाहिये जो स्वार्थान्धता को दबासके। गुरु गोविन्द सिंह जी का भक्ति क्षेत्र संसार की आंखों में ज्योति सञ्चार कर रहा है। गुरु तेगबहादुर, गुरु नानक, सभी भक्ति के मर्म को जानते थे। मर्म के जाने बिना पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। ज्ञान, धर्म, भक्ति सब का लक्ष्य एक ही है समझने का भारी दोष है। जब तक सामाजिक अंग पुष्ट नहीं होता तब तक और अंगों के पुष्ट होने की संभावना नहीं की जा सकती। वेदकी उच्च शिक्षा "संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्" को सर्वथा त्याग दिया है।

"समानी प्रपा सह वो अन्नभागा समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि। समान प्याऊ हो तुम्हारा खाना समान हो एक धागे में तुम्हें साथ सोमता हूं" आदि शिक्षाओं की अवहेलना करके घोर स्वार्थान्धता का ताण्डवनृत्य देश का खून चूस रहा है। ईश्वर से प्रार्थना है कि किसी प्रकार हमारे मरे समाज को भी जीवन दान दें। प्रेमी पाठकों से अनुरोध है कि जो कुछ बने करने को कटिबद्ध हो जांये। भक्ति का क्षेत्र खुल रहा है यथाशक्ति मनुष्य मात्र को सहयोग देना आवश्यक है। सब मिलकर सबके कल्याण की मंगल कामना करें कि:-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

ओ३म् शम् भवतु!!!

# कहां हो ?

[ ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम ]

अहो प्राण प्यारे कन्हैया कहां हो।
हृदय ज्योति के ऐ ! खिवैया कहां हो ॥
हुवा हाल बेहाल भक्तों का तेरे,
प्रभो भक्तवत्सल कहैया कहां हो ॥ १ ॥
दुःखी दीन जन हैं बिलखते तुम्हारे-
दुवारे, जगत् के रचैया कहां हो ॥ २ ॥
बढा भूमि पै पाप का भार अबतो,
रही धर्म की डूब नैया कहां हो ॥ ३ ॥
परित्राण भक्तों का दुष्टों का नाशन,
धरम हेतु नरतन धरैया कहां हो ॥ ४ ॥
तुम्हीं ने बनाया जगत नाथ ! सारा।
तुम्हीं विश्व पालक हरैया कहां हो ॥ ५ ॥
हुवा देश भारत दुःखी नाथ अब तो।
दुःखी दीन के तुम बचैया कहां हो ॥ ६ ॥
तुम्हारे दरश की बड़ी चाह अबतो,
मेरी दिल कली के खिलैया कहां हो ॥ ७ ॥
प्रभो नाव मझधार में आ फंसी है।
हृदय नाथ तुम अब खिवैया कहां हो ॥ ८ ॥

---

# गायत्री की उपासना

[ ले० श्री महात्मा राम भगवद्भक्ति आश्रम ]

ब्रह्मणो हृदयावनेकोपाधिविशिष्टस्य उपासनमुक्तम्। अथेदानीं गायत्री उपाधिविशिष्टस्योपासन वक्तव्यमित्यारभ्यते ॥ सर्वच्छन्दसां हि गायत्रीछन्द प्रधानभूतम् तत्प्रशंसा गयत्राणाद्गायत्रीति वक्ष्यति। न चान्येषां छन्दसां तथा प्रायः

शब्द ब्रह्मस्वरूप वेद भगवान के हृदय से उस नाश रहित अक्षर ब्रह्म की उपासनायें अनेकों उपाधि विशिष्ट कही गई हैं। क्योंकि वह अनेकों उपाधियों वाला है। अब यहां पर गायत्री विशिष्ट पर ब्रह्मकी उपासना कहते हैं। वेद के अन्दर जितने छन्द आये हैं उन सब छन्दों में गायत्री छन्द सबसे प्रधान माना जाता है। 'गयत्राणाद्गायत्रीति वक्ष्यति' गाने वालों की रक्षा करती है इसी कारण इसका नाम गायत्री कहा जाता है। इस गायत्री के सिवाय अन्य किसी भी छन्द में यह बात नहीं है। भाव यह है कि गायत्री को रक्षा करने वाली तथा सबका प्राण और आत्मा रूप उपनिषदों में कहा है और गायत्री से अन्य किसी छन्द के लिये रक्षक पना तथा सबका प्राण और आत्मापना नहीं कहा। अतः गायत्री की ही सर्व वेदों में प्रधानता पाई जाती है। जैसे मरे होते हुए प्राणों की ओर

तस्करादिकों से रक्षा करने वाले को क्षत्रिय कहाजाता है, तैसे गायत्री की उपासना करने वालों की गायत्री रक्षा करती है। इस कारण गायत्री क्षत्र के समान रक्षक है। 'प्राणश्च गायत्री' गायत्री प्राण स्वरूप है इस कारण गायत्री की उपासना विधान की है।

'द्विजोत्तम जन्म हेतुत्वाच्च' 'गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत। त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यम्''। 'इति द्विजोत्तमस्य द्वितीयं जन्म गायत्री निमित्तम्। तस्मात्प्रधाना गायत्री'।

गायत्री सर्व मनुष्यों के दूसरे उत्तम जन्म का हेतु है इसलिये भी गायत्री प्रधान है। त्रैवर्णिक लोगों को द्विजातीय कहने का यही अभिप्राय है कि गायत्री से दूसरा जन्म होता है। भाव यह है कि यह जीव एक बार माता से जन्म पाता है, और दूसरी बार गायत्री से जन्म पाता है। गायत्री से ही उत्तम जन्म माना जाता है तभी द्विज संज्ञा वाला कहा जाता है। जब यज्ञोपवीतादि संस्कार होता है तब माता के समान अति हित करने वाली गायत्री का उपदेश दिया जाता है। नियम पूर्वक जप करने वाले की गायत्री माता पिता के समान रक्षा करती है।

'गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत'। गायत्री से भगवान ने ब्राह्मण को उत्पन्न किया और 'त्रिष्टुभा राजन्यं' त्रिष्टुभ से क्षत्रिय को किया 'जगत्या वैश्यम्' और जगती से वैश्य को उत्पन्न किया। इस प्रकार दूसरे उत्तम जन्म का निमित्त यह गायत्री ही है। इस कारण गायत्री की उपासना प्रधान है। गायत्री पूर्व कालसे ही सब मनुष्य मात्र का इष्ट मंत्र है अतः अपना इष्ट किसी को कदाचित भी नहीं भुलाना चाहिये। गायत्री परब्रह्मका साक्षात् कराने वाली होने से उत्तम पुरुषार्थ रूप है, इस कारण गायत्री की उपासना का मुख्यतया विधान किया गया है। अब गायत्री के उन चार पादों को कहते हैं जिन पादों में समस्त ब्रह्माण्ड का अन्तर्भाव है तथा तिन चार पादों में चतुर्थ पाद केवल परमार्थ रूप है।

'भूमिरंतरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेव पदं वेद'। बृहदारण्य० ब्रा १४ मं० १॥

'भूमिरंतरिक्षंद्यौ' यह अष्ट अक्षर होते हैं, और गायत्री के प्रथम पद में भी अष्ट अक्षर हैं। 'तत्, स, वि, तु, वं, रे, (ण्यम्) णि, यम्'। इस प्रकार भूमि 'अन्तरिक्ष' और द्यौ (स्वर्ग) यह तीनों लोक गायत्री के अष्ट अक्षर रूप हैं, भावार्थ यह है 'भूमि अन्तरिक्ष द्यौ, यह तीनों लोक मिलकर गायत्री के प्रथम एक पाद स्वरूप होते हैं। जो उपासक इन तीनों लोकों को गायत्री का प्रथमपाद स्वरूप जानकर उपासना करता है वह उपासक इन तीनों लोकों में जो कुछ प्राप्तव्य है सबको जय कर लेता है। यह गायत्री के प्रथम पाद की उपासना का फल है।

'ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद, ॥ २ ॥

'ऋचो यजूंषि सामानि' इन अष्ट अक्षरों में तीनों वेद हैं इन्हीं को त्रयी विद्या कहते हैं। और गायत्री के द्वितीय पाद में भी 'भर्गो देवस्य धीमहि' यह अष्ट अक्षर हैं इन अष्ट अक्षर रूप गायत्री के द्वितीय पाद में 'ऋग्यजुसाम, यह तीनों वेद हैं, इन तीनों वेद रूप गायत्री के अष्ट अक्षर रूप द्वितीय पाद को जो उपासक जानता है, वह जहां तक तीनों वेदों से प्राप्तव्य अर्थ है उस समस्त अर्थ को जय कर लेता है भावार्थ यह है कि जो कुछ विद्या है वह 'ऋग्यजुसाम' इन तीनों वेदों के अन्दर है। सर्व विद्याओं का मूल वेद माने जाते हैं और वह वेद

गायत्री के द्वितीय पाद स्वरूप हैं। इस कारण गायत्री के उपासक पुरुष को उन सर्व विद्याओं की प्राप्ति रूप फल होता है।

'प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष रजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवं हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद'॥

'प्राणः अपानः' व्यान (वि आन) यह आठ अक्षर हैं, और गायत्री के तीसरे पाद में भी आठ अक्षर 'धियो यो नः 'प्रचोदयात्' इस प्रकार प्राण अपान व्यान यह अष्ट अक्षर रूप सर्व प्राणियों के अन्दर सञ्चार करने वाला प्राण गायत्री के तृतीय पाद स्वरूप है। इस अष्ट अक्षर रूप प्राण अपान व्यान को जो उपासक गायत्री का तृतीय पाद रूप जानता है वह यावत प्राण धारी जीव हैं उन सब पर जय को प्राप्त होता है। अर्थात् सब प्राणी मात्र को अपने वश में करलेता है। और इस गायत्री का तुरीय चौथा पाद दर्शत पद नाम वाला है, दर्शत पद का अर्थ इस प्रकार है, जो ज्योति स्वरूप पुरुष आदित्य मण्डल के अन्तर गत योगियों के दृष्टि गोचर होता है, जो निरन्तर सबको दीखता है वही ज्योति स्वरूप पुरुष सर्व प्राणियों के हृदय में रहता है जो सबको अपनी सत्ता स्फूर्ति देता है। 'परोरजा' रज, तम, सत्व इन तीन गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। उस त्रिगुणात्मिक प्रकृति से परे अर्थात् प्रकृति शून्य होने से उस भगवान को परो रजा कहा है, अथवा रजोत्पन्न सर्व लोकों से परे है स्थिति जिसकी और उन रजोत्पन्न सर्व लोकों का अधिपति होकर जो अपने तेज से सर्व लोकों को तपाता है उसका नाम परोरजा है। जैसे यह सूर्य सबका अधिपति होकर श्री और यशसे सर्वोपरि विराजमान होकर सर्वलोकों को तपाता है, तैसे जो उपासक गायत्री के तुरीय चतुर्थ पाद को सर्व लोकों का प्रकाशक शुद्ध चैतन्य रूप जानता है वह उपासक भी श्री और यश से प्रख्यात होकर सर्वोपरि तपता है, यह तुरीय चतुर्थ पाद के उपासक को फल होता है।

'सैषा गायत्र्येतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवंवेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते ॥ ४ ॥

वही यह त्रैलोक्य त्रयी विद्या और प्राण लक्षणों वाली त्रिपदा गायत्री इस तुरीय चतुर्थ प्रकृति से परे दर्शत पाद में स्थित है, वह दर्शत पाद सत्य में स्थित है, सत्य निश्चय करके चक्षु है, क्योंकि और इन्द्रियों की अपेक्षा चक्षु ही सत्य प्रसिद्ध है। जैसे अभी दो आदमी आपस में विवाद करते हुए आवें उनमें एक कहता है मैंने अमुक पदार्थ देखा है और दूसरा कहता है कि मैंने अमुक पदार्थ सुना है, इन दोनों में देखने वाला सच्चा माना जायगा। इसी कारण वह सत्य चक्षु में स्थित है, क्योंकि आंख से देखी हुई वस्तु का प्रमाण बली होता है इसलिये सत्य बल विषे स्थित है, और बल प्राण का नाम है क्योंकि सब इन्द्रियों में प्राण ही बलवान है। इसलिये सत्य प्राण में स्थित है, इसी कारण प्राण को सत्य से अधिक बलवान कहते हैं। इस प्रकार प्राण के अधिक बलवान होने से यह गायत्री प्राण में स्थित है। वही यह गायत्री गायन

( जप ) करने वालों की रक्षा करती है। गायत्री का गायन करने वाले वागादि इन्द्रियां हैं। इसलिये उन वागादिकों की गायत्री रक्षा करती है, और क्योंकि जपने वालों की रक्षा करती है इस कारण गायत्री नाम करके प्रसिद्ध है। जिस गायत्री को आचार्य शिष्य के प्रति उपदेश करता है, वही गायत्री जो आचार्य ने शिष्य को कही है यह उस शिष्य के प्राणों की रक्षा करती है। ऐसी यह गायत्री जिसमें समस्त जगत् की स्थिति है और जो सबका आत्मा रूप है उस प्राण स्वरूप गायत्री को उपरोक्त विचार पूर्वक श्रद्धा से नित्य प्रति सब को जपना चाहिये। ओ३म् शम्।

# भजन

जिनके मन राम भरोसा है ॥ टेक ॥
प्रीतम किया कामली वाला,
फिर क्या करना साल दुसाला।
मनकी माल तनकी मृग छाला,
भजन बगल का तोसा है ॥ १ ॥
आठों पहर राम रंग भीना,
अपना रूप सकल जग चीना।
जंगल में मंगल लगा लीना,
फिर बस्ती से क्या रेसा है ॥ २ ॥
है नेकी नदी दया दरवाना,
हाकिम मौज गरीबी थाना।
शम्भुदास संतन का बाना,
क्षमाशील सन्तोसा है ॥ ३ ॥

२

सांवरे घनश्याम तुमतो प्रेमके अवतार हो।
संकटों में फंस रहा हूं तुमही खेवन हार हो ॥
आपका दर्शन मुझे वारम वार हो।
हाथ में मुरलि मुकुट सरपर गले में हार हो ॥
चल रहि आंधि भयानक भंवर में नइया परि।
थामलो पतवार गिरधर अबतो बेड़ा पार हो ॥
नगन पद गजके रुदन पर भागने वाले प्रभु।
देखना निसफल न मेरे आंसू कि धार हो ॥

३

आजा आजा आजा आजा।
शून्य हृदय में आकर समाजा ॥ टेक ॥
घरतेरा वीरान पड़ा है,
आजा इसको बसाजा ॥ १ ॥
चैन नहि अब तड़फ रहा हूं,
आन इधर को दुख मिटाजा ॥२॥
तेरी जुदाई बहुत सही है,
अबतो धीर बंधाजा आजा ॥ ३ ॥
कछुवा सुहावे तेरे बिना अब,
करके दया अब दर्श दिखाजा ॥४॥
तेरे विरह से हुवा हूं घायल,
मरहम आन लगाजा आजा ॥ ५ ॥
इस पिया से मिलन की आसा,
दुई का परदा दूर हटाजा ॥ ६ ॥

REG DNo. ,L 2077

# भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता | मूल्य | ॥=) |
| २. | भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... | ,, | ।=) |
| ३. | गीता मूल ( मोटा टाइप ) ... ... | मूल्य नित्य पाठ | |
| ४. | वेदोपनिषद् ... ... | | ।=) |
| ५. | अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... | ,, | =)। |
| ६ | ज्ञानधर्मोपदेश ... ... | ,, | =)॥ |
| ७. | भक्ति ज्ञान योग संग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| ८. | सत्य शब्द संग्रह (गुटका) ... ... | ,, | =) |
| ९. | सत्य शब्द संग्रह ... ... | ,, | ॥=) |
| १०. | शब्द सदाचार संग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| ११. | शब्द सार संग्रह ... ... | ,, | =)। |
| १२. | शब्दसंग्रह ... ... | ,, | =)॥ |
| १३. | सारसंग्रह ... ... | ,, | ।) |
| १४. | भाषा फक्किका प्रकाश ... ... | ,, | ।=) |
| १५. | मनुस्मृति सार ... ... | ,, | ३)। |
| १६. | भक्ति चिन्तामणि ... ... | ,, | ।=) |
| १७. | भगवद्भक्तांक ... ... | ,, | ॥=) |
| १८. | भगवदंक ... ... | ,, | ॥।) |
| १९. | गवांक ... ... | ,, | १।) |
| २०. | महात्मांक ... ... | ,, | १) |

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

**श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।**

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।